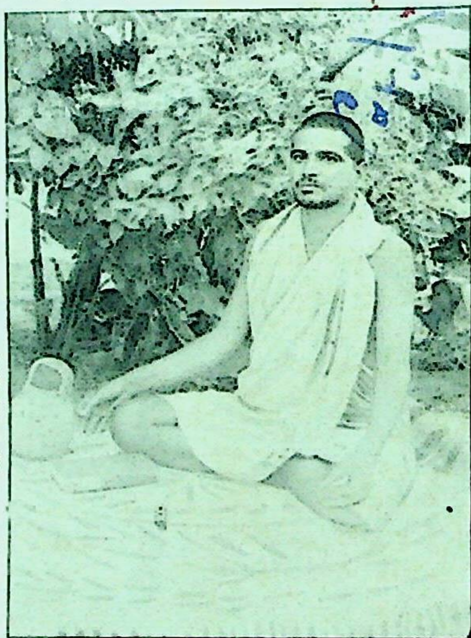
पुताक्षात्

महावाक्य-रत्नावली



श्री स्वामी रामदेवजी

मुद्रक:—
श्री हरिवंश नारायण दुबे, गंगा प्रेस, दारागंज-प्रयाग।



श्री १००८ वीतरागी

श्री स्वामी रामदेवजी महाराज

श्रीहरि:

वक्तव्य

वेदों के विषय में कुछ कहना मानो सूर्य को दीपक दिखलाना है। वेद अपौरुषेय हैं—साक्षात् ईश्वर की वाणी हैं। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्', 'सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति'—ये हैं वेदों के प्रति आप्त महर्षियों की भव्य भावनाएँ। वेद समस्त सत् विद्याओं के अक्षय भण्डार समस्त धर्मों के आदि उद्गम-स्थान और समस्त ज्ञान-विज्ञान के एकमात्र मूलाधार हैं। वेद आर्य-धर्म, आर्य-संस्कृति एवं भारतीय सभ्यता के आधारस्तम्भ तथा आर्य-विचार-धारा के मूल-श्रोत हैं। वेदों ने ही संसार को सर्वप्रथम शाश्वतधर्म, संस्कृति सभ्यता एवं आचार-विचार के दिव्यसन्देश दिये थे। वेदों ने ही इस अज्ञान तमावृत संसार को सब से पहले दिव्यालोक से आलोकित किया था। वेद आर्यजाति की अक्षय महानिधि हैं आर्य-सन्तान की दृष्टि में वे 'स्वतः प्रमाण' हैं। आर्य-जाति अथवा हिन्दू-जाति की जीवन-धारा इसी मूलश्रोत से निर्झरित होती है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वेद आर्यजाति के मौलिक स्वरूप की 'उसकी चिन्तनधारा को' एवं उसकी जीवन प्रदात्री शक्ति की स्वच्छतम घनीभूत प्रतिमा हैं।

अतएव जब तक हमें वेदों का भाव है, जब तक उनके प्रति श्रद्धा और विश्वास की भावना है और जब तक हम अपनी चिन्तन-धारा को उसी मूलश्रोत से मिलाये हुए हैं, तब तक हमें

जीवनशक्ति बराबर उपलब्ध होती रहेगी, तब तक हमारी संस्कृति और सभ्यता अजर-अमर बनी रहेगी और हम निरन्तर अपने चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

किन्तु, घोर दुःख की बात है कि हम इस सार्वभौम सिद्धान्त को धीरे धीरे भूलते चले जा रहे हैं और क्रमशः वैदिक ज्ञान-विज्ञान से दूर से दूर तर होते जा रहे हैं। मानो हमने अपने ही हाथों अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारने की ठान ली है। हमारी इस दयनीय दुरवस्था को देख कर किस सहृदय विचार शील पुरुष का हृदय तिलमिला न उठेगा ?

साधु-सन्तों का जन्म संसार में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' के महाभावों की प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिये ही होता है। उनका ही हृदय नवनीत के समान स्वच्छ, कोमल और दयार्द्र होता है। वे ही पर दुःख कातर होकर नवनीत के समान, आर्त की एक करुण पुकार पर द्रवित हो उठते हैं। यह उनका स्वतः सिद्ध स्वभाव होता है। "पर दुख द्रवहि सो संत पुनीता"। यही उनका लक्षण होता है।

अनन्त श्री स्वामी रामदेव जी महाराज अनन्त सन्तों के मुकुटमणि, वीतरागी, सर्वस्वत्यागी एवं हम निराश्रयों पर 'घनश्याम' की भाँति निरंतर वात्सल्य-भाव की अमृतवर्षा करने वाले एक परमभागवत सिद्धपुरुष हैं।

यह सम्वाद बड़े हर्ष के साथ सुना जायगा कि हम लोगों के आग्रह पर स्वनामधन्य श्री स्वामी रामदेव जी महाराज ने

"वैदिक—साहित्य" पर गवेषणापूर्वक निबन्ध लिखना स्वीकार कर लिया है। इस पुण्य आयोजन का सूत्रपात आपकी रचित "श्री महावाक्य रत्नावली" के हिन्दी अनुवाद से होता है। यह पुस्तक कैसी है, इसकी समीक्षा करना हमारी शक्ति और हमारे अधिकार-क्षेत्र के बाहर की बात है। हमारे लिये तो यह 'गुरु-दीक्षा' की भाँति मान्य, वदान्य और शिरोधार्य है।

इस महामहिम 'ग्रन्थ-रत्न' को हमारे सम्मुख रख कर तो पूज्यपाद श्री स्वामी जी अपने अतुलनीय वात्सल्य-भाव का पूर्ण परिचय दे चुके। अब हमें अपना कर्त्तव्य-पालन करना है। इस 'ग्रन्थ-रत्न' का स्वाध्याय करके, उसकी शिक्षाओं को अपने जीवन-साँचे में ढाल करके तथा उसी के अनुरूप अपना जीवन बना करके ही हम अपना कर्तव्य पालन कर सकते हैं। और वस्तुतः देखा जाय तो ऐसा करके ही हम इस ग्रन्थ-राज की महत्ता को तथा उसके स्वनामधन्य रचयिता के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट कर सकते हैं। अतः

उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
उठो, जागो और वरणीय वस्तु का वरण करो।

निवेदक:—
लक्ष्मीनारायण बजाज,
कन्हैयालाल पांडे

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

भूमिका

इस अपार संसार सागर में निमज्जनोन्मज्जन (डूबते उतराते) हुए जीवों के लिए अवलम्बन एक परमात्मतत्वविज्ञान ही है। बिना तत्वज्ञान को सम्यक् रूप से प्राप्त किए कोई भी अपना उद्धार नहीं कर सकता। क्योंकि जब तक किसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को न जाना जाय तब तक उसका सदुपयोग नहीं किया जा सकता। संसार में कोई भी पदार्थ दूषित नहीं किन्तु उसका उपयोग ही दूषित होता है। पदार्थों का सदुपयोग करने के लिये ही विवेकी पुरुष तत्वज्ञान के लिये प्रयत्न करते हैं। जिसकी जितनी बुद्धि है वह उतना ही ज्ञान सम्पादन करता है। मनुष्यों के अतिरिक्त पशु पक्षी आदिकों को अपने आहार विहारादि के तत्व का ज्ञान स्वभाव से ही होता है। परन्तु उस से अधिक ज्ञान सम्पादन नहीं कर सकते। अतएव उनको भोजनादि की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके भोजन आदिक नियमितरूप से स्वस्वभावानुसार ही होते हैं। अतएव वे रोग आदिकों से ग्रसित नहीं होते। सर्वप्राणिमात्र में अधिक बुद्धिमान् मनुष्य ही है। यह निज बुद्धिबल की महिमा से समस्त पदार्थों के पूर्णतत्व को जानने में समर्थ होता है।

परन्तु अपने आप किसी भी पदार्थ के तत्व को जानने में समर्थ नहीं। इसी कारण इसकी शिक्षा शिक्षकों द्वारा सदा से ही दी जाती है। जब से संसार सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तभी से मानव शिक्षा का भी प्रारम्भ हुआ है।

यद्यपि कुछ आधुनिक विकास वादियों का यह कहना है कि धीरे धीरे मानव शिक्षा का विकास हुआ है और हो भी रहा है। इनके मत में न तो कोई सर्वज्ञ सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर है न ईश्वर के द्वारा उपदिष्ट कोई मानव धर्म ही है। केवल देश काल और परिस्थिति के अनुसार मनुष्य अपने आप ही सांसारिक व्यवहार को सुचारु रूप से चलाने के लिये नियमादिकों की कल्पना कर लेता है। ईश्वर और धर्म कुछ नहीं हैं। मरने के बाद पुनः जन्म भी नहीं होता है। जो कुछ किया जाता है उसका फल यहां पर ही मिल जाता है तथापि ईश्वर और धर्म को मानने वाले प्रायः सभी महानुभावों का यह सिद्धान्त है कि मानव सृष्टि के प्रारम्भ में ही मानव शिक्षा का भी प्रारम्भ हुआ है वह शिक्षा क्या है और कैसे उसका प्रारम्भ है इन बातों में मतभेद भी है। परन्तु एक बात को संसार के सभी विवेकी स्वीकार करते हैं कि सर्वप्रथम मानव शिक्षा का प्रारम्भ वेदों के द्वारा ही हुआ। क्योंकि वेद से प्राचीन कोई धार्मिक ग्रन्थ आज तक समुपलब्ध नहीं हुआ है। और वैदिक सिद्धान्त के मानने वाले तो वेद को अनादि अपौरुषेय ही मानते हैं। अर्थात् वह वेद किसी भी पुरुष के द्वारा रचा नहीं गया है। परमात्मा

भी उसकी रचना नहीं करता। वह वेद परमात्मा का स्वाभाविक ज्ञान है। अतएव जब से ईश्वर तभी से वेद और उसकी शिक्षा का विकास है। इसमें सर्व देश कालादि के अनुसार सर्वमानवोपयोगी शिक्षायें हैं।

सर्वमनुष्यों की प्रकृति, बुद्धि, बल समान न होने के कारण सबके लिए समान शिक्षा या धर्म नहीं। क्योंकि संसार के सभी मनुष्य सर्व प्रकार की शिक्षा को ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव उनकी योग्यता के अनुसार ही शिक्षा देने का विधान वेद में है। मनुष्यों की योग्यता का परिज्ञान भी वेद के द्वारा होता है किस मनुष्य में क्या शक्ति है इसका परिज्ञान सर्व साधारण को नहीं होता। वेद को परिपूर्ण रीति से जिन्होंने अध्ययन किया है वे ही जानने में समर्थ होते हैं वेद में कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीन काण्ड हैं। मानव प्रकृति के वैचित्र्य होने से कर्म और उपासना के अनेकों प्रकार के भेद हैं। ज्ञान में भेद नहीं है। यद्यपि कहीं कहीं ज्ञानियों के ज्ञान में भी भेद देखा जाता है। तथापि वह भेद वास्तविक नहीं। केवल व्यावहारिक सत्ता को लेकर के ही भेद व्यवहार होता है।

प्रथम कर्म और उपासना के रहस्य को जान कर स्वस्ववर्णाश्रम के अनुसार अनुष्ठान भी करना चाहिए। क्योंकि कर्म से मल की निवृत्ति होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। और उपासना से अन्तःकरण की निर्मलता तथा विक्षेप की निवृत्ति रूप एकाग्रता भी प्राप्त होती है।

मल विक्षेप से रहित विशुद्धान्तःकरण साधन चतुष्टय संपन्न पुरुष ही ज्ञान का अधिकारी होता है। विवेक, वैराग्य, शम, दमादि षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुता ये चार साधन हैं। सत्य और असत्य के विचार को विवेक कहते हैं। त्रिकालाबाध्य त्रिविध परिच्छेद शून्य अपरिणामी तत्व ही सत्य है। इससे भिन्न असत्य है। संसार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील तथा क्षणभंगुर हैं। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। अतएव यह संसार सत्य नहीं। जब संसार की असत्यता का परिज्ञान परिपूर्ण रीति से हो जाता है तब संसार के सभी पदार्थों से वैराग्य होता है। अर्थात् दिव्य से भी दिव्य पदार्थों के भोग की इच्छा नहीं होती है। वैराग्य होने के अनन्तर ही शम, दम, श्रद्धा, तितिक्षा, समाधान उपरति ये षट् सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। मन के शान्त होने को शम कहते हैं। बाह्य इन्द्रियों के निग्रह का नाम दम है। गुरु और वेदान्त वाक्यों में विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। प्रतीकार के बिना समस्त शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करने को तितिक्षा कहते हैं। चित्त की स्थिरता का नाम समाधान है। साधन सहित समस्त कर्मों के त्याग का नाम उपरति है। संसार रूपी बन्धन से मुक्त होने की इच्छा का नाम मुमुक्षुता है। इन साधनों का वर्णन वेदान्त के समस्त ग्रन्थों में विस्तार से है। बिना इन साधनों को प्राप्त किये कोई भी वेदान्त श्रवण का अधिकारी नहीं होता है। बिना अधिकारी के वेदान्त को समझना अति कठिन है। अतएव अधिकारी का विचार सभी वेदान्त

ग्रन्थों के प्रारम्भ में किया गया है। परन्तु वर्तमान समय में वेदान्त सिद्धान्त प्रचार की धुन में आकर वास्तविक वेदान्त सिद्धान्त रहस्यानभिज्ञ सब को वेदान्त का उपदेश करते हैं। ज्ञान का जो फल शास्त्रों में वर्णन किया गया है वह अधिकारी पुरुषों को ही प्राप्त होता है। अनधिकारी पुरुषों को तो और उल्टा ही फल मिलता है।

शोक मोह की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति ही ज्ञान का परम फल है। जो वेदान्त के अधिकारी नहीं हैं उनके शोक मोह और अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

अतएव उपरोक्त साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर उपनिषदों का श्रवण करे। केवल श्रोत्रिय अथवा केवल ब्रह्मनिष्ठ गुरु से कल्याण होना असम्भव है। अतएव श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ को ही गुरु करना चाहिये। श्रोत्रिय उसको कहते हैं जो कि वैदिक सम्प्रदाय के द्वारा गुरुमुख से वेदाध्ययन किया हो। समस्त वेदार्थ को न समझ कर जो किसी पूर्व पुण्य के प्रताप से ब्रह्म में स्थित है उसको ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं। ब्रह्मनिष्ठ अपना कल्याण कर सकता है; किन्तु शिष्यों के संदेह को निवृत्त न कर सकने के कारण उनका कल्याण नहीं कर सकता। केवल श्रोत्रिय भी निश्चित रूप से ब्रह्म का उपदेश नहीं कर सकता।

तत्त्व का साक्षात्कार वेदों से ही होता है। इतिहास और पुराण उसी के अर्थ का विस्तार करते हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और

वैश्य, जिनके यज्ञोपवीत संस्कार हुए हैं वे वेदाध्ययन पूर्वक तत्त्व का विचार कर सकते हैं, इनसे अतिरिक्त पुराणादिकों के श्रवण से भी ज्ञान सम्पादन कर सकते हैं।

ऋग्, यजुः, साम, अथर्वण ये चार वेद हैं। उनमें ऋग्वेद की एकविंशति २१ शाखायें हैं। नवाधिक शत १०९ शाखायें यजुर्वेद की हैं सामवेद की सहस्र १००० शाखायें हैं। पञ्चाशत् ५० शाखायें अथर्वण वेद की हैं। एक एक शाखा की एक एक उपनिषद् हैं। सब अशीति सहित शताधिक सहस्र ११८० उपनिषद् हैं। उनमें से रामचन्द्र जी ने अपने दूत हनुमान जी को अष्टोत्तर शत १०८ उपनिषदों का उपदेश किया है। वर्तमान समय में उन्हीं की उपलब्ध भी होती है। उनमें भी दश प्रधान हैं जिन पर कि आचार्यों के भाष्य भी समुपलब्ध हैं। सभी आचार्य महानुभाव अपने अपने मत के अनुसार भाष्य करते हैं। द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अद्वैत सिद्धान्त परक श्रुतियों को लगाते हैं। किसका भाष्य श्रुति के तात्पर्य्य के अनुकूल है किसका नहीं यह निर्णय करना अति कठिन है। जो पदवाक्य प्रमाण के ज्ञाता हैं वे ही कुछ विचार कर सकते हैं। परन्तु उनमें भी जिनका संस्कार जैसा होता है। वे वैसा ही सिद्धान्त निश्चय कर लेते। श्रुतियों के तात्पर्य्य निर्णय के लिये श्री वेदव्यास जी ने ब्रह्मसूत्र का निर्माण किया है। परन्तु उसके ऊपर भी भाष्यकार लोग निज निज सिद्धान्तानुकूल भाष्य करते हैं। इस तरह उपनिषद् गीता और ब्रह्मसूत्र पर

भाष्यकारों के भाष्य निज निज मतानुसार ही हुए हैं, इस समय भी अनेकों टीकायें होतीं जा रही हैं। इस ओर ग्रन्थों का विस्तार अधिक हो गया है। साधारण लोग किस प्रकार से तत्व का निश्चय करें। क्योंकि अल्पायु तथा प्रज्ञामान्द्य आदि दोषों के कारण समस्त ग्रन्थों का अध्ययन हो नहीं सकता। अतएव उत्तम अधिकारी तथा सर्वसामान्य लोगों के लाभ के लिये श्री रामचन्द्र सरस्वती जी ने समस्त उपनिषदों के महावाक्यों का संग्रह किया है। जिसका नाम महावाक्य रत्नावली है। इसमें समस्त उपनिषदों का सिद्धान्त आ गया है। उपनिषदों का सिद्धान्त वेदान्त ही है। उसके समझने के लिये संसार से निवृत्त होने की परमावश्यकता है। अतएव चतुर्थाश्रम में स्थित सन्यासियों का ही इसके विचार में मुख्य अधिकार है। पूर्व जन्मार्जित पुण्यपुञ्ज से विशुद्ध स्वान्तःकरण सद्गृहस्थ भी विचार कर सकते हैं। वर्तमान समय में वर्णाश्रम धर्म नाममात्र का अवशेष रह गया है। अतएव किसका अधिकार किस विषय में है। यह विवेचन भी दुर्घट ही है। परन्तु सर्वसम्मत तथा सर्वसुख शान्ति दायक वैदिक सिद्धान्त का विचार करने से यही निश्चय होता है कि विषयासक्त पुरुष कभी किसी अवस्था में भी सूक्ष्म तत्त्व का विवेचन नहीं कर सकता। अतएव इसमें सर्वदार्शनिकों की सम्मति है। विषयों का परित्याग दो तरह से होता है एक तो मानस दूसरा बाह्यस्वरूप से। प्रथम जिसने बाह्य विषयों का त्याग करके अभ्यास कर लिया

है वह मानस त्याग भी कर सकता है। मानसत्याग केवल गृहस्थाश्रम वालों के ही लिये उपयोगी है। क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर बाह्य विषयों का परित्याग हो ही नहीं सकता। परन्तु गृहस्थ भी शास्त्र विधि के अनुसार ही विषयों का सेवन करे। नहीं तो गृहस्थ जीवन अति दुःख दायक हो जायगा। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम में तो विषय और विषयोपभोग की सामग्री का स्वरूप से परित्याग करने का विधान है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है। यदि इसके धर्म का परिपालन हो जाय तो सभी आश्रमों का धर्म सुचारु रूप से पालन किया जा सकता है। अतएव संक्षेप में ब्रह्मचारियों के मुख्य धर्म का उल्लेख करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर गुरु के समीप जाकर वेद वेदाङ्ग का स्वाध्याय करें और भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करें। ब्रह्मचर्य में स्थित होकर एक का अन्न आपत्ति के बिना न ग्रहण करें और मधु मांसादि का सदा परित्याग करें। जैसा याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है।

मधुमांसाञ्जनोच्छिष्ट शुक्त स्त्रीप्राणिहिंसनम्।
भास्करालोकनश्लील परिवादादि वर्जयेत्॥ १—३३

मधु, मांस, अञ्जन, उच्छिष्ट (जूठा), निष्ठुर वचन, स्त्री, जीववध, उदय और अस्त के समय सूर्य का देखना, असत्य भाषण अथवा गुरु जनों का भाषण, सत्य या असत्य रूप से दूसरों के दोषों का वर्णन करना और गन्ध माला, छाता, जूता आदि का धारण करना सदा वर्जन करे। आश्वलायन का है कि

जितने कामोद्दीपक पदार्थ हैं उन सबका परित्याग करै तभी ब्रह्मचर्य्य की रक्षा हो सकती है और विद्या भी पढ़ी जा सकती है। प्राचीन समय में इस ब्रह्मचर्य्य की रक्षा का ध्यान अधिक था, तभी मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक शक्ति से पुष्ट होते थे। वर्तमान समय में तो अध्ययन काल में ही ब्रह्मचर्य्य नष्ट हो जाता है। अतएव शारीरिक और मानसिक शक्ति भी नष्ट हो जाती है। इसी कारण सूक्ष्म विषय को समझ भी नहीं सकते। ब्रह्मचर्य्य रक्षा के लिए मुख्य कर्त्तव्य यह है कि सात्विक आहार विहार हो। अर्थात् सीधा सादा जीवन हो और मन परमात्मा के चिन्तन में लगा हो। जो प्रथम अवस्था में सादगी से जीवन व्यतीत कर लेते हैं उनको पुनः कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। वे समस्त दुःखों को सहर्ष सहन कर लेते हैं। यद्यपि प्राचीन समय के अनुसार आजकल ब्रह्मचर्य्याश्रम का होना अति कठिन है तथापि उसके मुख्य धर्म जो बतलाये गये हैं जितेन्द्रिय होना यह तो अवश्य ही पालन करना चाहिये। क्योंकि इन्द्रियों के संयम से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। विषयों का दोष यदि चिन्तन करता रहे तो अवश्य ही जितेन्द्रिय हो सकता है। जितेन्द्रिय के लक्षण ये हैं:—

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥ मनु २-९८

स्तुति और निन्दा वाक्य को सुनकर, सुखस्पर्श वस्त्रादि दुःखस्पर्श मेघ-कम्बल आदि को स्पर्श कर, सुन्दर रूप या कुरूप को देखकर, स्वादु या स्वादुरहित भोजन करके, सुगन्ध या दुर्गन्ध

ॐ रामराम रामराम ॐ

को नाक से ग्रहण कर भी जिसको हर्ष और विषाद नहीं होता वह जितेन्द्रिय है।

इस प्रकार जितेन्द्रियपने को जिसने ब्रह्मचर्य्याश्रम प्राप्त करके समस्त विद्याओं का अध्ययन किया है, वह जिस किसी आश्रम को ग्रहण करै वहां ही सुखी रह सकता है। जिसने ऐसा नहीं किया है वह कहीं सुखी नहीं रह सकता है। गृहस्थाश्रम में रह कर समस्त यज्ञ यागादिकों को शास्त्रविधि से करै, पुनः वानप्रस्थाश्रम में अति घोर तप करै, अनन्तर सन्यास आश्रम को ग्रहण करै यह क्रम है अथवा ब्रह्मचर्य्य आश्रम से ही सन्यास ले ले। तीव्र वैराग्य होने पर ही सन्यास का विधान है। जैसा कि जीवन्मुक्ति विवेक में विद्यारण्य स्वामीजी ने प्रतिपादन किया है।

पुनरावृत्तिसहिता लोका मे मा सन्तु कदाचन।

इति तीव्रतरस्य स्यान्मन्दे न्यासो न कोऽपि हि ॥२॥

पुनरावृत्ति के सहित हमको कोई भी लोक न प्राप्त हो। ऐसी दृढ़वृत्ति को ही तीव्रतर वैराग्य कहते हैं इस वैराग्य में ही परमहंस सन्यास को ग्रहण करे। यद्यपि सन्यास के कई भेद हैं तथापि उन सब का वर्णन नहीं करते हैं क्योंकि वर्तमान समय में केवल परमहंस नामक सन्यासी ही अधिकतर देखे जाते हैं। अतएव उन्हीं का वर्णन संक्षेप से करते हैं। जिज्ञासु और ज्ञानवान ये दो प्रकार के परमहंस हैं। जो ब्रह्म स्वरूप के जानने की इच्छा से संन्यास लेता है वह जिज्ञासु है और उस संन्यास का नाम विविदिषा सन्यास है। जिसको ईश्वर की कृपा से

प्रथम ही ज्ञान हो गया और उस ज्ञान के अनन्तर जो संन्यास लेता है उस संन्यास का नाम विद्वत्संन्यास है। यह संन्यास सलिंग और अलिंग भेद से दो प्रकार का है। दंडादि चिन्हों के धारण पूर्वक संन्यास करने का नाम सलिंग संन्यास है। इसमें केवल ब्राह्मण वर्ण का ही अधिकार है। किसी प्रकार के नियत वेष न रखने का नाम अलिंग संन्यास है। यही मुख्य संन्यास है अधिकतर इसी की प्रशंसा श्रुति स्मृतियों में है। जीवन्मुक्ति का विशेष आनन्द अलिंग संन्यास में ही प्राप्त होता है। सर्व प्रकार के संन्यासियों का परम धर्म भिक्षामात्र से जीवन-निर्वाह करना है। धनादि का संग्रह सर्वथा निषिद्ध है। यह संसार भर के समस्त निवृत्ति प्रधान मतवालों का सिद्धान्त है कि निवृत्ति मार्ग पर चलने वालों को संग्रह नहीं करना चाहिये— प्राचीन समय में जब वैदिक धर्म का पूर्ण रूप से सर्वत्र प्रचार था तब यह संन्यास आश्रम रूप में था— जो संसार से अति-विरक्त होकर इस लोक तथा परलोक से समस्त भोगों का परि-त्याग काक विष्ठा के समान करता था वही संन्यास का अधिकारी समझा जाता था। वही संन्यासाश्रम में भी रहता था। यह समस्त वैदिक साहित्य के अवलोकन से निश्चित होता है। परन्तु वर्तमान समय में जैसी अवस्था संन्यासाश्रम की है वह आप लोगों से छिपी नहीं है। यद्यपि सभी आश्रमों की दशा शोच-नीय है परन्तु इसकी अति शोचनीय है क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ आश्रम है। इसके बिगड़ने से ही सब बिगड़ जाते हैं। यदि

इस आश्रम में रहने वाले निज धर्म पर आरूढ़ रहें तो सब को बिना उपदेश किए ही धर्मात्मा बना सकते हैं।

अब यह आश्रम रूप से देखने में नहीं आता है। इसके नाम से अनेकों प्रपञ्च खड़े किए जाते हैं। इसमें नाना प्रकार के मत-भेद खड़े हो गए हैं। कोई नियम नहीं, जिसके मन में आया कि हम संन्यासी बन जायँ, फिर सन्यासी बनते देर नहीं लगती। परन्तु अपने श्रेय सम्पादन के लिये संन्यास लिया जाय तो शास्त्रोक्त प्रकार से—शास्त्रों में इसके विषय में बहुत कुछ लिखा है उसका उद्धरण यदि यहां करें तो अति विस्तार हो जायगा। अतएव यति धर्म संग्रह या जीवन्मुक्ति विवेक में संन्यासियों के धर्म को देखना चाहिए।

इस महावाक्य रत्नावली में भी उपदेश वाक्यों के संग्रह में तथा जीवन्मुक्ति प्रतिपादक वाक्यों में सन्यासियों का धर्म वर्णित है। बाह्य और आन्तर दो प्रकार के चिह्न होते हैं। बाह्य तो मुख्य चिह्न दिगम्बरपना है। यदि दिगम्बर न हो सके तो आवश्यकता के अनुसार वस्त्रादि को ग्रहण करै। परन्तु अधिक संग्रह न करै तथा गृहस्थों का वेष न बनावै। यदि नकल ही करै तब भी जैसा वेष शास्त्रों में वर्णित है वैसा ही बनावै। आन्तर चिह्न परमानन्द में निमग्नता है। सन्यासी के चित्त में कभी दुःख नहीं होता। इसी से वह सुख स्वरूप हो जाता है।

सुख स्वरूपता ब्रह्म साक्षात्कार से होती है। ब्रह्म साक्षात्कार का साधन ब्रह्मविद्या है। ब्रह्म विद्या का अधिकारी वही उपरोक्त

साधन चतुष्टय सम्पन्न पुरुष है। उसी में विद्या फलवती होती है। अन्य श्रद्धालु पुरुष भी ब्रह्मविद्या का श्रवण श्रद्धाभक्ति से कर सकते हैं। श्रवण मात्र से पाप नष्ट होता है। ब्रह्मविद्या उपनिषदों में अनेकों प्रकार से वर्णित है उसी विद्या को संक्षेप में समझाने के लिए इस महावाक्य रत्नावली में सर्व उपनिषदों का सार लेकर इकट्ठा किया गया है। यह ग्रन्थ विरक्त महात्माओं को अतिप्रिय है। इसके ऊपर एक संस्कृत टीका भी हुई है। परन्तु जिनको संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान नहीं तथा जो किसी अन्य से सुनने में सङ्कोच करते हैं। उनको इससे लाभ होना अति कठिन है। क्योंकि इसका अनुवाद हिन्दी भाषा में अभी तक नहीं हुआ है।

इस वर्ष जब हमने कानपुर में चातुर्मास्य में निवास किया तो कई सत्सङ्गी गृहस्थ भी इसके प्रेमी देखे गये। मैं कानपुर में कभी कभी गङ्गातट पर विचरता हुआ आया जाया करता हूँ। यह नगर संयुक्तप्रान्त में व्यापार का मुख्य स्थान होने से अति-प्रसिद्ध ही है। यहाँ प्रथम मैं सरसय्याघाट के सामने गङ्गापार गङ्गावाटिका में प्रायः ठहरा करता था। जिसकी स्थापना श्री शुक्ल बोधाश्रम जी ने विरक्त महात्माओं के ठहरने के लिये की है। वह अतिरमणीक तथा शुद्ध जल वायु वाला स्थान है। प्रायः गङ्गातट पर विचरने वाले सभी विरक्त महात्मा वहाँ पर ठहरा करते हैं।

उसके बाद श्री वागेश्वर महादेव जी के स्थान में ठहरने का सौभाग्य हीरानन्द जी पर्वतीय (पहाड़ी) के अनुरोध से प्राप्त

हुआ। यह स्थान कानपुर में नवाबगंज के पास अति प्राचीन समय से है। और इसकी प्रसिद्धि भी सर्वत्र है। यहाँ पर सदा शिवभक्तों का आगमन हुआ करता है। यहाँ का जल वायु अति शुद्ध है। यहाँ का दृश्य ऐसा मनोरम है कि सब का मन देखते ही आकर्षित हो जाता है। प्रातः और सायंकाल के समय तत्व-जिज्ञासु लोग तत्वज्ञानियों के सत्सङ्ग के लिये आया करते हैं। एक सत्सङ्ग भवन तथा सत्सङ्ग पुस्तकालय की स्थापना भी सत्सङ्गी लोगों ने मिलकर की है। उसके समीप सन्तों के ठहरने के लिये कुटियाँ भी बनी हैं।

वहाँ पर ही एक दिन सत्संग भवन में सत्संग के समय में महावाक्यरत्नावली के विषय में पण्डित कन्हैयालाल पाण्डे तथा श्रेष्ठ (सेठ) लक्ष्मीनारायण बजाज ने यह विचार प्रगट किया कि संस्कृत भाषा में होने के कारण हम लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते। अतएव हम लोगों के लाभ के लिये इसका सरल हिन्दी अनुवाद कर देना चाहिये। हमारे विचार से भी यह बात ठीक ही प्रतीत हुई। इसका अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। श्री सदाशिव भगवान् की परमानुकम्पा से अनुवाद निर्विघ्न समाप्त भी हो गया। अनुवाद संक्षेप से साधारण हिन्दी भाषा में ही किया गया है। क्योंकि विस्तार करने से ग्रन्थ बड़ा हो जाता और मूल के समझने में भी कठिनाई पड़ती। सर्वसाधारण के लिये उपयोगी भी सिद्ध नहीं होता है। जहाँ तक हो सका है सर्वोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। परन्तु विशेष लाभ

अधिकारी पुरुषों को ही होगा। क्योंकि इसमें अद्वैत वेदान्त का वर्णन है। इसके समझने के लिये अति सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है। स्थूल बुद्धि वालों को समझाना तथा समझना अति कठिन है। अतएव सर्वसाधारण को अद्वैत वेदान्त का उपदेश करना शास्त्रों में निषेध किया गया है। क्योंकि इसमें सर्वसंसार को मिथ्या सिद्ध किया गया है। इसको श्रवण कर अनधिकारी नास्तिक बुद्धि वाले हो जाते हैं। ईश्वर और धर्म आदि को मिथ्या समझ कर परित्याग कर देते हैं, जिससे अनेकों प्रकार का कष्ट उठाना पड़ता है।

अद्वैत सिद्धान्त को यदि समझ जाय तो जगत् के व्यवहार में बाधा नहीं पड़ती। जैसा व्यवहार शास्त्रों में वर्णन किया गया है वैसा ही अद्वैत ब्रह्म के ज्ञान होने पर भी करना चाहिये। ज्ञानी जिस वर्ण या आश्रम में स्थित होता है उसके अनुसार ही व्यवहार भी करता है। जैसे सर्वज्ञ सर्वशक्ति सम्पन्न श्रीभगवान अवतार लेकर धर्म की रक्षा करते हैं और स्वयं भी उसका आचरण करते हैं। क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं वैसा ही अन्य लोग भी आचरण करते हैं। अतएव व्यावहारिक सत्ता में आकर तत्वज्ञानी को भी शास्त्रानुकूल ही व्यहार करना चाहिये। जब कि भोजनाच्छादन आदि का व्यवहार उचित रूप से किया जाता है तब धार्मिक व्यवहार करने में ही क्या हानि है। इसी तरह ज्ञानी परमात्मा की भक्ति भी करता है। क्योंकि ज्ञान होने के पूर्व ईश्वर भक्ति ज्ञान का साधन होती है

ज्ञान होने के अनन्तर वह स्वाभाविक रूप से होती है। अतएव अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक सभी आचार्य्य महानुभावों ने ज्ञानोत्तरकाल में भी भक्ति का खण्डन नहीं किया है हां, आज कल कुछ वेदान्त सिद्धान्तानभिज्ञ धर्म और ईश्वर दोनों का निराकरण करते हैं ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिये।

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्रार्थना सदा करनी चाहिये। यदि विश्वासपूर्वक परमात्मा की प्रार्थना सदा की जाय तो धर्म तथा अद्वैत ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान में किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं हो सकती। इस महावाक्य रत्नावली में सिद्धान्त वचन ही हैं। इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई वाक्य समझ में न आवे तो किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष से समझ लेना चाहिए। क्योंकि पदपदार्थ ज्ञान सम्पन्न पुरुष इसको समझा सकते हैं। जिसको स्वयं समझने की शक्ति प्राप्त करना है। उस को संस्कृत भाषा का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि जिसको जिस भाषा का पूर्ण ज्ञान नहीं होता वह उस भाषा में निर्मित ग्रन्थों को स्वयं विचारने में समर्थ नहीं होता उसको केवल अन्धविश्वास से ही काम चलाना पड़ता है। आर्ष ग्रन्थों की संस्कृत अति सरल है यदि थोड़ा भी परिश्रम किया जाय तो समझने में कठिनाई नहीं।

जो संस्कृत भाषा में नहीं समझ सकते उन्हीं के समझने के लिए यह सरल हिन्दी भाषा का अनुवाद है। जो अर्थ बिना किसी प्रकार की खींचातानी किए सरलता से समझ में आ

जाय वही अर्थ सही होता है। अथवा गुरुमुख से जो अर्थ वैदिक परम्परा में अविच्छिन्न रूप से प्राप्त हो वह ठीक होता है। परन्तु जब कि सभी भाष्यकार तथा टीकाकार अपने २ अर्थ को अनादि परम्परा से प्राप्त सिद्ध करते हैं, तब किस के अर्थ को माना जाय। कहा जा सकता है कि जिसमें श्रद्धा विश्वास हो उसके अर्थ को मान ले। यह ठीक है परन्तु इसमें बुद्धि रही परतन्त्र ही। अतएव स्वतन्त्र बुद्धि से विचार करने की शक्ति यदि सम्पादन करनी है तो संस्कृत भाषा का अध्ययन नियमानुसार करे जिससे कि भाषा पर अधिकार हो जाय।

उपनिषदों का अर्थ सरलता से अद्वैत सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करने वाला प्रतीत होता है। और संस्कृत व्याकरण से भी अद्वैतवाद ही प्रतिपादित है। अतएव हमने भी जो अनुवाद किया है वह अद्वैतवाद के ही अनुसार है। स्वभाव से भी प्राणियों की प्रवृत्ति एकत्व की ही ओर होती है। क्योंकि सुख एकत्व में ही है। यदि एकत्व में सुख न होता तो सुषुप्ति अवस्था को कोई भी नहीं चाहता। परन्तु नित्य लोगों की प्रवृत्ति सुषुप्ति की ओर होती है। सुषुप्ति में द्वैत प्रपञ्च का सर्वथा अभाव रहता है। और उसमें सुख की भी समुपलब्धि होती है यह सर्व प्राणिमात्र को अनुभव होता है। अतएव संसार भर के सभी विचारकों को यह मानना पड़ता है कि एकत्व में ही सुख और अनेकत्व में ही दुःख होता है। किसी न किसी रूप से सब को एकत्ववाद मानना ही पड़ता है। कोई अवस्था ऐसी

सभी मानते हैं जो कि सुषुप्ति से भी परे है। जिस अवस्था में जाकर परमानन्द का अनुभव होता है, उसकी परिभाषा में भेद हो सकता है परन्तु उसकी सत्ता सबको स्वीकार करनी पड़ती है। अतएव जिस उपाय से अनेकत्व मिटकर एकत्व सिद्ध हो वही करना चाहिए। इसमें देश काल जाति की अपेक्षा नहीं और यह भी नियम नहीं कि अमुक भाषा के ग्रन्थ पढ़ने से ही एकत्व ज्ञान होता है। जिस भाषा में एकत्व का प्रतिपादन हो वही श्रेष्ठ है। हाँ, इतना अवश्य कह सकते हैं कि सर्व भाषाओं की जननी कोई एक ही भाषा है और वह संस्कृत ही है। क्योंकि संसार में आज तक कोई भी भाषा ऐसी नहीं सिद्ध हुई जो संस्कृत भाषा से प्राचीन हो तथा इसके समान सुन्दर, ललितभाव, को अभि-व्यक्त करने वाली हो, वैसे तो जो जिस भाषा का ज्ञाता होता है। वह उसी की प्रशंसा करता है परन्तु यदि निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय तो सर्व श्रेष्ठ संस्कृत ही है। अतएव इसको देववाणी कहते हैं।

भारतवासियों को तो अवश्य ही यह प्रिय होनी चाहिये। क्योंकि समस्त भारतीय विज्ञान इसी भाषा में है। यद्यपि वर्तमान समय में संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में होता जा रहा है। तथापि जो आनन्द मूल के पढ़ने में है वह अनुवाद में नहीं।

हमने भी यह हिन्दी अनुवाद इसी लिये किया है जिससे सबको यह विदित हो जाय कि संस्कृत साहित्य में क्या क्या

रत्न भरे हैं। इस हिन्दी अनुवाद से यदि हिन्दी भाषा प्रेमी लाभ उठाना चाहें तो उसी से कल्याण हो सकता है। यदि यह सिद्धान्त बुद्धि में आरूढ़ हो जाय तो उसी क्षण समस्त दुःख निर्मूल होकर परमानन्द की प्राप्ति हो जाय। अब अन्त में इस महावाक्य रत्नावली के अध्ययन करने वालों से निवेदन किया जाता है कि इस रत्नावली को यत्न से निज बुद्धि रूप गुहा में रख कर रक्षा करने का प्रयत्न सतत करते रहना चाहिये और काम क्रोध आदि तस्कर कहीं इसको चुरा न ले जावें अतएव श्री भगवान् की प्रार्थना सदा करते रहिये तो वे सर्वसमर्थ भगवान् सर्व प्रकार से रक्षा करेंगे और समस्त तत्वों के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान भी भगवत्प्रार्थना से ही सुलभ हो जायगा।

वर्तमान समय में तो सिवाय भगवान के और कोई भी सहायक नहीं अतएव भगवान् का ही सहारा लेना चाहिये।

"सत्सङ्ग भवन"
श्री यागेश्वर-महादेव
नवाबगञ्ज, कानपुर।

"रामदेव"

द्वितीय संस्करण

इधर चिरकाल से यह ग्रन्थ अप्राप्य था, भक्तों का आग्रह था इसका पुनः प्रकाशन किया जाय। अतः श्री बजाज जी की सहायता से अब के इसका प्रकाशन प्रयाग से कराया है। इस संस्करण में कुछ घटाया बढ़ाया नहीं है। जो अशुद्धियाँ रह गई थीं वे शुद्ध कर दी गई हैं।

संकीर्तन भवन झूसी
(प्रयाग)

रामदेव

मंगलाचरण

॥ ॐ श्रीमद्विश्वाधिष्ठान परमहंस सद्गुरु श्रीरामचन्द्रायनमः ॥

यो विश्वादिर्विदेहान्त महावाक्यार्थविग्रहः ।
श्रीरामचन्द्ररूपाय तस्मै भूमात्मने नमः ॥१॥

जो सर्वं खल्विदं ब्रह्म—इत्यादि वाक्यों से प्रारम्भ करके और "वैदेहीमुक्त एवसः" इस समाप्ति के वचन तक—विधि आदि और विदेह मुक्ति पर्यन्त महावाक्यों का अर्थ सर्व विरोधी द्वैत प्रपञ्च से रहित ब्रह्ममात्र स्वरूप से स्थित लक्षण शरीर रहित कैवल्य अवस्था स्वरूप है उस व्यापक श्रीरामचन्द्ररूप के लिये नमस्कार है ॥१॥

यः पूज्यो यतिभिः स्वधर्मनिरतैर्ध्यायन्ति यं योगिनो ।
येनार्थो निगमान्तवेद्यमनिशं यस्मै हविर्दीयते ॥
यस्मात्स्थावरजङ्गमं समभवद्यस्यांशमात्रोऽवरो ।
यस्मिन् लीनमिदं प्रणौमि सततं तं वासुदेवं गुरुम् ॥२॥

निज आश्रम धर्म से सम्पन्न संन्यासियों से जो पूज्य हैं, और योगी जिनका ध्यान करते हैं। जिसने वेदान्तवेद्य ब्रह्म-स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है जिस वैश्वानररूप के लिये सदा हवि दी जाती है। जिससे यह समस्त स्थावर जङ्गमरूप

जगत् समुत्पन्न हुआ है। जिसका अंशमात्र जीवसमूह है। जिस आत्म स्वरूप ब्रह्म में यह जगत् लीन होता है। उस वासुदेव नामक गुरु को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥२॥

नत्वा श्री वासुदेवेन्द्रपादपङ्करुहद्वयम् ।
ग्रथ्यते वै महावाक्यरत्नावलिरियं मया ॥३॥

श्री वासुदेवेन्द्र सरस्वती के दोनों चरणकमलों को नमस्कार करके मैं इस महावाक्य रत्नावली का संग्रह करता हूँ।

भाद्रपद शु० ४—१९९८ दिन मंगलवार।

शान्तिपाठ।

वाङ्-पूर्ण-सहना-प्याय-भद्रं कर्णेभिरेव च ।
पञ्चशान्ति पठित्वादौ पठेद्वाक्यान्यनन्तरम् ॥

इत्युक्त्वाश्च।

वाङ्-पूर्ण-सहनाववतु-आप्यायन्तु-भद्रंकर्णेभिः-इन शांतियों को पढ़कर अनन्तर अन्य वाक्यों को पढ़े।

ऐसा कहा है—वह शान्ति यह है ॥

वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनोमे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्मएधि वेदस्य म आणीस्थः। श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्सदधाम्यमृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥१॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। ऐतेरयोपनिषद्।

मे—हमारी। वाक्—उपनिषद् ग्रन्थ के पाठ में प्रवृत्त वाक् इन्द्रिय मनसि, प्रतिष्ठिता—मन से जो शब्दसमूह विवक्षित है वही पढ़ें। मे मनः, वाचि प्रतिष्ठितम्—जो वक्तव्य शब्द समूह है वही मन से विवक्षित हो। इस तरह एक दूसरे से अनुगृहीत वाणी और मन ब्रह्म विद्या प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण रीति से समस्त ग्रन्थ के धारण करने में समर्थ होते हैं। आविः स्वयं-प्रकाश ब्रह्म हे ब्रह्म मदर्थ आविःर्भव-अज्ञान को दूर करके प्रकट हो। हे वाक् मनसी मे—हे वाणी और मन हमारे लिये। वेदस्य—उपनिषद् को। आणीस्थः—ले आने में समर्थ हों। मे—मुझसे श्रुतम्—अध्ययन किया हुआ ग्रन्थसमूह और उसका अर्थ। मा प्रहासीः—विस्मृत न हो। अनेन—इस विस्मरण से रहित अध्ययन किये हुये ग्रन्थ से। अहोरात्रान् सन्दधामि—आलस्य को त्याग कर अध्ययन किये हुये ग्रन्थ को निरन्तर पढ़ूँ। ऋतम्-मानसिक सत्य। सत्यम्—वाचिक सत्य। वदिष्यामि—बोलूं। तत—हमसे वक्ष्यमाण वह ब्रह्मतत्व। माम् अवतु—मुझ शिष्य की रक्षा करे। वक्तारम् अवतु—आचार्य का बोधक सत्य प्रदान से पालन करे ॥१॥

पर और अपर विद्या के प्राप्ति के विघ्नरूप आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के निवृत्ति के लिये तीन बार शान्ति शब्द का उच्चारण किया गया है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

जो देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित है वह पूर्ण है। जो 'अदः' ऐसा परोक्ष सूचक सर्वनाम है वह भी निरुपाधिक होने से पूर्ण है। जो इदं शब्द वाच्य व्यवहार को प्राप्त है वह भी सोपाधिक रूप से व्याप्त होने से पूर्ण है। जो अदः शब्द से वाच्य कारणभाव को प्राप्त पूर्णब्रह्म है। वही इदं शब्द से वाच्य कार्योपाधि से अवच्छिन्न की तरह प्रतीत होता है। वस्तुतः (वास्तविक) कार्य कारणभाव को प्राप्त दोनों एक और पूर्ण हैं। ऐसा समझना चाहिये।

इन दोनों के बीच में प्रपंचारोपाधिकरणत्व से पूर्ण रूप से इदं शब्द वाच्य प्रपञ्चापवादाधिकरणता से पूर्ण अदः शब्द वाच्य ब्रह्म उत्कृष्ट होता है। कार्यकारणरूप से पूर्ण वस्तु का कार्यकारण सम्बन्ध शून्य मैं ब्रह्म हूँ। इतना मात्र पूर्ण को जान कर उसी समय कार्यकारण के सम्बन्ध से सत्त्व असत्त्व का विभ्रम दूर हो जाता है और पूर्ण ब्रह्म स्वरूप मात्र शेष रहता है ॥ २ ॥ ईशावास्योपनिषद् ।

ॐ सहनाववतु सहनौ-भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । केनोपनिषद् ।

उपनिषद् से ही जानने योग्य ब्रह्म, हम दोनों शिष्य और आचार्य्य की साथ ही रक्षा करें। साथ ही हम दोनों को विद्या का फल ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करें साथ ही विद्या द्वारा सामर्थ्य को प्राप्त करें। हम दोनों से अधीत समस्त ग्रन्थसमूह

को ब्रह्म ज्ञान के योग्य करें। उस अध्ययन में यदि प्रमाद से कोई द्वेष होवै तो वह न होवै। उसके क्षमा के लिए यह प्रार्थना है कि हम दोनों शिष्य और आचार्य आपस में विद्वेष न करें ॥ ३ ॥ केनोपनिषद् ।

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्य्याम् ॥ मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्व-निराकरणंमेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ४ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । केनोपनिषद् ।

व्यष्टि और समष्टि प्रपञ्च के आरोप और अपवाद का आधार विराट-हिरण्यगर्भ ईश्वर और ब्रह्म, मुक्त मुमुक्षु के कर-चरणादि अंगों को चिन्मुद्रा और सिद्धासनादि में व्यापृत करें। उसकी कृपा से हमारे पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्चप्राण बहिर्मुख प्रवृत्ति को त्याग कर अन्तर आत्मा की ओर यथा बल, श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा सदा प्रवृत्त हों। जो ईशादि १०८ अष्टोत्तरशत उपनिषदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म है। वह सर्व स्वरूप है क्योंकि —"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुति से सर्व-जगत् को ब्रह्मरूप ही कहा है। अतएव ब्रह्म से मैं अतिरिक्त हूँ इस बुद्धि से मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं। अर्थात् मैं ब्रह्म ही हूँ ऐसा अनुसन्धान करता रहूँ। ब्रह्म भी प्रत्यग्भाव को प्राप्त मेरा निराकरण न करे। मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म ही मैं हूँ। हम दोनों का

निराकरण न हो—निराकरण न हो। जब यह सिद्ध हो गया कि एक आत्मा का निराकरण नहीं होता और सबका होता है। तब ब्रह्म भाव को पूर्ण रूप से प्राप्त जो मैं हूँ। उस मुझमें, उपनिषदों में प्रकाशित शम, दम, निष्कामता आदिक सच्चिदानन्दादिक धर्म सदा रहें, सदा रहें ॥ ४ ॥ केनोपनिषद्।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमदेवहितं यदायुः ॥५॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। प्रश्नोपनिषद्।

हे विराट् आदि देव, हम मुमुक्षु आपकी कृपा से अपने कर्णों से निर्विशेष ब्रह्म के प्रतिपादक वचनों को सुनें। अर्थात् जब तक समस्त अविद्यादि दोषों की शान्ति न हो जाय तब तक वेदान्त का श्रवण करें। और शास्त्र की विधि के अनुसार वेदान्त का श्रवण करते हुए ध्यान यजन शील हम लोग अन्तर्मुख हुई इन्द्रियों से तुरीयातीत ब्रह्म को देखें। उन उन अङ्गों के अभिमानी इन्द्रादि देवताओं की कृपा से स्व-स्व विषय गोचर से शून्य सूक्ष्म वस्तु गोचर अङ्गों से विशिष्ट हम आप लोगों की स्तुति करते हुए प्रजापति से समर्पित आरोग्यादि गुण से युक्त अधिक आयु को प्राप्त करें ॥ ५ ॥ प्रश्नोपनिषद् ॥

स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

महात्मा पुरुषों द्वारा पुराणादिकों में जो गुने जाते हैं। ऐसे

देवताओं के अधिपति इन्द्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए हम लोगों का कल्याण करें। सर्वज्ञ सूर्य भगवान् हम लोगों के ऊपर ऐसा अनुग्रह करें कि हम लोगों का मन ब्रह्ममात्र के ध्यानानुकूल हो। और अकुण्ठित गति गरुड़ भी ऐसा अनुग्रह करें कि हम लोगों का मन निरन्तर कल्याण स्वरूप ब्रह्म में ही लगा रहे। देवताओं के आचार्य बृहस्पति, हम लोगों की समस्त इन्द्रियों के समूह को केवल ब्रह्म की ही ओर प्रवृत्त करें ॥ ६ ॥

उपरोक्त सभी मन्त्रों में तीन बार शान्ति पढ़ने का यही अभिप्राय है कि वात, पित्त और कफ के वैषम्य से उत्पन्न हुआ जो इस स्थूल शरीर में ज्वर आदि रूप दुःख वह शान्त रहे। क्योंकि जब तक शरीर में किसी भी प्रकार की व्याधि शेष रहता तब तक मन सूक्ष्म तत्व के विचार में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता। अतएव शरीर को निरोग रहने के लिए शास्त्रों में अनेकों प्रकार से भोजन आदि का वर्णन किया गया है तथा ब्रह्मचर्य आदि साधनों का विस्तार से वर्णन है। इसी तरह भौतिक सर्प बिच्छू मनुष्यादिकों से भी शान्ति रहे। अर्थात् इनके उपद्रव न हों। क्योंकि इनके उपद्रवों के वर्तमान होने पर भी विचार नहीं हो सकता। और मन में काम क्रोधादिक विकार भी न पैदा हों। क्योंकि काम क्रोधादि के रहने से भी मन अशान्त रहता है तथा वायु, जल, अग्नि आदि और भूत प्रेतादि दैविक दुःख भी सदा शान्त रहें। क्योंकि ये भी मन वाणी आदि में क्षोभ पैदा करते हैं। इस तरह इन सभी दुःखों की शांति के लिए ही शांति का पाठ है।

—:o:—

महावाक्यरत्नावल्याम्



अथ साद्धान्तिकविधिवाक्यानि

अब साद्धान्तिक विधि वाक्यों का संग्रह करते हैं। अर्द्धान्तिक के सहित विधि वाक्य को सार्धान्तिक कहते हैं। क्रमकालिक विच्छेद को अर्द्धान्तिक कहते हैं। वह इन्हीं विधि वाक्यों में होता है। "स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत" इस विधि वाक्य में नहीं, इसको घनान्त पाठी व्युत्पन्न वैदिकों से समझना चाहिये।

वह विधि वाक्य यह हैं—

ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत् ।१।

छा० ३ अ० १४ स्व०

यह समस्त संसार ब्रह्म ही है। क्योंकि उसी से उत्पन्न होता है और उसमें ही स्थित है और उसी में लय हो जाता है। इस कारण, ब्रह्म जगत का उपादान कारण हुआ—कारण से भिन्न कार्य होता नहीं। अतएव समस्त जगत की उपासना ब्रह्मरूप से ही रागद्वेषादि दोषों से रहित होकर करनी चाहिए।

आत्मानमेवावेदहं ब्रह्मामि ॥ इति २ ॥

मुमुक्षु पुरुष गुरुमुख से अपने आप को, मैं ब्रह्म हूँ ऐसा जानता है ॥२॥

आत्मावाअरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ३

हे मनुष्यो ! अपने आत्मा को ही उपाय से देखना चाहिए। उसके दर्शन का उपाय है वेदान्त का श्रवण। अतएव गुरु के मुख से सर्व वेदान्त शास्त्र का श्रवण करना चाहिये। क्योंकि विना श्रवण किये वस्तु के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान नहीं होता है। श्रवण के अनन्तर पुनः असम्भावना आदिक दोषों की निवृत्ति के लिये मनन करना चाहिये। पुनः अन्तर्मुख हुई बुद्धिवृत्ति से मैं ब्रह्म ही हूँ ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥३॥

महत्पदं ज्ञात्वा वृक्षमूले वसेत् ॥४॥

ब्रह्म को जान कर वृक्ष के मूल में निवास करें। अर्थात् कोई मकान अपने रहने के लिए न बनवावै ॥ ४ ॥

सच्चिदानन्दात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ॥५॥

सत् चित् आनन्दस्वरूप आत्मा को अद्वितीय ब्रह्मरूप से भावना करें। अर्थात् आत्मा और ब्रह्म दोनों अभिन्न हैं ऐसी भावना करें ॥ ५ ॥

अहं ब्रह्मास्मीत्यनुसंधानं कुर्यात् ॥६॥

मैं ब्रह्म हूँ यह भावना करें ॥ ६ ॥

स तज्ज्ञो बालोन्मत्तपिशाचवज्जडवृत्त्या लोकमाचरेत् ॥७॥

वह तत्त्व ज्ञाता बालक, उन्मत्त, पिशाच की तरह जडवृत्ति से

लोक व्यवहार को करै। अर्थात् अपने स्वरूप का प्रकाश अपने आप न करके संसार में छिप कर ही विचरण करै, तभी जीवन्मुक्ति के सुख का आविर्भाव होता है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः समाहितो भूत्वा तत्त्वंपदैक्यमेव सदा कुर्यात् ॥८॥

ब्राह्मण एकाग्रचित्त होकर सदा तत् पद का लक्ष्यार्थ तथा त्वं पद का लक्ष्यार्थ जो शुद्ध सच्चिदानन्दघनरूप ब्रह्म है। उसकी एकता का ही निश्चय करै ॥ ८ ॥

सर्वत्राद्वैतब्रह्मबुद्धिं कुर्यात् ॥९॥

अज्ञान दृष्टि से प्रतीयमान जो द्वैत प्रपञ्च, उसका बाध करके सबमें अद्वैत बुद्धि करैं ॥ ९ ॥

आशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न स्वधाकारो न निंदास्तुतिर्यादृच्छिको भवेत् ॥१०॥

ब्रह्म ज्ञानी मान अपमान का आश्रय देहादि में अपना अभिमान त्याग कर देता है अतएव दिगम्बर होकर तथा ज्येष्ठ कनिष्ठ फल प्राप्ति के अभाव से नमस्कार रहित, और स्वाहा स्वधा वषट्कार गोचर कर्म सामान्य का सन्यास करने से स्वाहा स्वधाकार रहित, दुश्चरित्र और सच्चरित्र के अभाव से निन्दा स्तुति रहित, प्रवृत्ति निवृत्ति के त्याग से रहित स्वेच्छाचार होवै ॥ १० ॥

सर्वतः स्वरूपमेव पश्यन् जीवन्मुक्तिमवाप्य प्रारब्ध-प्रतिभासनाशपर्य्यन्तं स्वरूपानुसंधानेन वसेत् ॥११॥

सर्वत्र स्वरूप को ही देखता हुआ, जीवन्मुक्ति को प्राप्त करके जब तक प्रारब्ध कर्म का नाश न होवै तब तक अपने स्वरूप के चिन्तन से ही काल को बितावै ॥ ११ ॥

स्वरूपानुसंधानं विनाऽन्यथाचारपरो न भवेत् ॥१२॥

ब्रह्मज्ञानी कभी भी स्वरूप का अनुसन्धान त्याग कर अन्यथा आचरण में प्रवृत्त न होवै ॥ १२ ॥

वेदान्तश्रवणं कुर्वन् योगं समारभेत ॥१३॥

गुरु के मुख से वेदान्त का श्रवण करता हुआ योग का अभ्यास करे ॥ १३ ॥

आकुंचनेन कुण्डलिन्याः कपाटमुद्घाट्य—
मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥१४॥

अपान वायु के आकुंचन से अग्नि धौंकनी से सन्तप्त कुण्डलिनी शक्ति से ही ग्रन्थि से युक्त सुषुम्ना नाड़ी के कपाट को खोलकर मोक्ष का द्वार जो कैवल्य नाड़ी है उसका भेदन करे अर्थात् ब्रह्म चिदाकाश में स्थित होवे।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ॥१५॥
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१६॥

ब्रह्मज्ञानी वाणी आदि इन्द्रियों को मन में लय करे। उस मन को ज्ञानस्वरूप आत्मा में लय करे ॥ १५ ॥

उस ज्ञान को अव्यक्तरूप परमात्मा में लय करै। उस अव्यक्त को निर्विकल्प परमात्मा में लय करै ॥ १६ ॥

आत्मानञ्चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ॥१७॥
किमिच्छन्नकस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥१८॥

यदि जीव अपने आपको जान जाय कि यह मैं असंग कूटस्थ निर्विकार हूँ, तो क्या इच्छा करता हुआ किसकी कामना से शरीर के दुःखी होने पर दुःखी होवे। अर्थात् जब जीव अपने आपको असंग कूटस्थ परब्रह्म रूप से जान लेता है, तब उसकी समस्त कामना नष्ट हो जाती हैं। किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं होती। शरीर के सुखी दुःखी होने पर भी वह सुखी दुःखी नहीं होता, सदा परमानन्द में निमग्न होकर परमतृप्ति को प्राप्त करता है ॥१८॥

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥१९॥
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ॥२०॥

धीर ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण उस परमात्मा को ही जान कर उसमें बुद्धि को स्थित करे। उससे अतिरिक्त बहुत भेद के प्रतिपादक शब्द और ग्रन्थों का पठन और चिन्तन न करे, क्योंकि उससे केवल वाणी और मन का परिश्रम ही होता है।

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ॥२१॥
अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥२२॥

जिस कारण सकल्पादि वृत्ति से रहित निर्विषय इस मन की मुक्ति विद्वानों से मानी गई है। अतएव प्रतिदिन मुमुक्षु को चाहिये कि मनको संकल्परहित निर्विषय करे ॥२१-२२॥

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् ॥२३॥
दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥२४॥

चित्त ही संसार है अर्थात समस्त संसार का हेतु है। अतएव उसका शोधन प्रयत्न से करें। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड समूहरूपी दृश्य ब्रह्म से से अतिरिक्त नहीं है। इस निश्चय से समस्त दृश्य को अदृश्य करके स्वरूप ब्रह्म का ही चिन्तन करै ॥२३-२४॥

मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद् ब्रह्मभावनम् ॥२५॥

यह नाना प्रकार का भेदरूप जगत् यदि माया का कार्य्य है ऐसा ज्ञान हो गया, तो ब्रह्म की भावना से जगत् के नानात्व को त्याग देवै ॥२५॥

देहोऽहमिति दुःखं चेद् ब्रह्माहमितिनिश्चयः ॥२६॥

यदि मैं देह रूप हूं यह वृत्ति दुःखरूप है, तो उस वृत्ति को त्याग कर मैं ब्रह्मरूप हूं ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥२६॥

हृदयग्रन्थिरस्ति चेच्छेदयेद्ब्रह्मचक्रकम् ॥२७॥

यदि आत्मानात्मा की अविवेक रूपी हृदय की ग्रन्थि है—तो ज्ञानरूप चक्र को लेकर उसका छेदन करें। अर्थात् आत्मा अनात्मा तथा जड़ चेतन का विचार न होना ही हृदय की ग्रन्थि है। वही अज्ञान है। उसको विवेकरूपी चक्र से छेदन करके ब्रह्मसाक्षात्कार को प्राप्त कर मूल अज्ञान का मूलोच्छेदन कर देवै ॥२७॥

संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाप्नुयात् ॥२८॥

मैं ब्रह्म हूं या नहीं। ऐसे संशय के समुत्पन्न होने पर मैं ब्रह्म हूँ ऐसा निश्चय प्राप्त होता है अर्थात् जब जीव को यह संशय उत्पन्न होता है कि मेरा स्वरूप ब्रह्म से भिन्न है या नहीं, तब उस संशय को निवृत्त के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर संशय को निवृत्त करके अपने आपको ब्रह्मस्वरूप निश्चय करता है। जिसको संशय ही नहीं उसका संशय दूर कैसे होगा। अति ज्ञानी या अति अज्ञानी को ही संशय नहीं होता। इन दोनों के लिए संशय निवृत्ति की कोई आवश्यकता भी नहीं पड़ती ॥२८॥

विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रं जीवितञ्चापि चञ्चलम् ॥२९॥

यह जीवन अति चञ्चल है। अतएव मुमुक्षुओं को अक्षर तन्मात्र ब्रह्म को ही जानना चाहिए ॥२९॥

विहाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदुपास्यताम् ॥ ३० ॥

अनेक शास्त्रों के अभ्यासरूप जाल को त्याग कर जो सत्य स्वरूप ब्रह्म है उसकी उपासना करो ॥ ३० ॥

यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निस्त्रीकस्य क्व भोगभूः ॥ ३१ ॥

जिसके स्त्री है उसी को भोग की इच्छा होती है। जिसके स्त्री नहीं है उसके लिए भोग की भूमि कहां है। अर्थात् स्त्री रहित के लिए भोग भूमि नहीं है ॥ ३१॥

स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ३२ ॥

स्त्री के त्याग से ही जगत् त्यागा जाता है। क्योंकि स्त्री ही सब जगत् का मूल है। और उसके त्याग से मनुष्य जीवन्मुक्त

हो जाता है। तभी समस्त दुःखों से रहित होकर सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

समस्त विषयों के कल्पना का कारण चित्त है। अतएव चित्त के होने पर ही जगत् भासित होता है ॥ ३३ ॥

तस्मिन्क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥३४॥

उस चित्त के नाश होने पर जगत् का भी नाश हो जाता है। अतएव उस चित्त के नाश का ही उपाय विशेष प्रयत्न से करना चाहिए ॥ ३४ ॥

सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम् ॥३५॥

सोने से उठ कर पुनः सोने तक एक ब्रह्म का ही विचार करो ॥ ३५ ॥

गच्छँस्तिष्ठन्नुपविशञ्छयानो वाऽन्यथापि वा ॥३६॥

ब्रह्मज्ञानी चलता हुआ, खड़ा हुआ, बैठा हुआ, शयन करता हुआ अथवा और किसी अन्य क्रिया का अनुष्ठान करता हुआ ब्रह्म का अनुसन्धान करे ॥ ३६ ॥

यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥३७॥

आत्मा में ही रमण करने वाला मुनि विधि निषेध से रहित होकर मैं ब्रह्म ही हूँ ऐसा चिन्तन करता हुआ सदा स्थित रहे।

ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यतिः ।३८॥

यत्नशील मुमुक्षु त्रैकालिक बाध से रहित ब्रह्मस्वरूप ज्योतिलिंग का भ्रू के मध्य में सदा ध्यान करे ॥

आत्मानमात्मना साक्षाद् ब्रह्मबुद्ध्या सुनिश्चलम् ॥३९॥
देहजात्यादिसम्बन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान् ॥४०॥
वेदशास्त्रपुराणादिपदपांसुमिव त्यजेत् ॥४१॥

ज्ञानी समाहित मन से अपने स्वरूप को सुनिश्चित निर्विशेष साक्षाद् ब्रह्म स्वरूप जान कर वर्णाश्रम से युक्त देहजाति आदि सम्बन्धों को तथा वेदशास्त्र पुराणादिकों को पांव में लगी हुई धूलि के समान परित्याग कर देवै ॥ ३९—४१ ॥

एकाकीनिस्पृहस्तिष्टेन्नहि केन सहालपेत् ॥४२॥
दद्यान्नारायणेत्येवं प्रतिवाक्यं सदा यतिः ॥४३॥

सन्यासी सब में स्नेह त्याग कर अकेला स्थित हो। ब्रह्मवार्ता से अतिरिक्त वार्तालाप किसी के साथ न करें और वह कार्य के अनुरोध से प्रश्न होने पर भी 'नारायण' इस शब्द से उत्तर देवें ॥ ४२—४३ ॥

मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥४४॥

ध्यान में तत्पर मुनि कौपीन वस्त्र को धारण करें अथवा नग्न रहैं ॥ ४४ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः ॥४५॥

अपनी आत्मा में रमण करता हुआ स्वमहिमा में ही स्थित विषयों की इच्छा से रहित और सर्व संकल्प को त्याग कर संसार में विचरै ॥४५ ॥

आत्मनेव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥४६॥

इस लोक में निर्विशेष ब्रह्ममात्र के सुख की इच्छा वाला अपनी ही सहायता से अकेला विचरै ॥ ४६ ॥

संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः ॥ ४७ ॥

वर्णाश्रम के आचार से रहित सन्यासी सर्व मनुष्यों को यह ब्राह्मण है या नहीं इस प्रकार संदिग्ध वेष वाला रहै। अर्थात् ऐसा वेष धारण करै कि जिससे लोग उसको संदेह की दृष्टि से देखें ॥ ४७ ॥

अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥ ४८ ॥

सर्व प्रकार के सङ्कल्प आदिकों से रहित मुनि पृथ्वी पर अन्धे की तरह, जड़ की तरह और गूंगे की तरह विचरै। अर्थात सर्व इन्द्रियों की चपलता से रहित होवै ॥ ४८ ॥

यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ४९ ॥

मुमुक्षु पुरुष जो जो चक्षु इन्द्रिय से देखता है वह वह आत्मा है ऐसी भावना करै ॥ ४९ ॥

यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५० ॥

जो जो कर्णों से सुनता है वह वह आत्मा है ऐसी भावना है करै ॥ ५० ॥

लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५१ ॥

नासिका से जो जो गन्ध ग्रहण करता है वह वह आत्मा है ऐसी भावना करै ॥ ५१ ॥

जिह्वया यद्रसं ह्यत्ति तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५२ ॥

जिह्वा से जो जो रस ग्रहण करता है वह वह आत्मा है ऐसी भावना करें ॥ ५२ ॥

त्वचा यद्यत्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५३ ॥

योगी त्वग् इन्द्रिय से जो जो स्पर्श करें वह वह आत्मा है ऐसी भावना करें ॥ ५३ ॥

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् ॥ ५४ ॥

ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है इस तरह की ज्ञानमयी दृष्टि को करके सर्व जगत को ब्रह्ममय देखें ॥ ५४ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् ॥ ५५ ॥
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥ ५६ ॥

द्रष्टा, दर्शन, दृश्य का जहाँ पर विराम होवे वहीं पर दृष्टि करनी चाहिए। नासिका के अग्र भाग को अवलोकन करने वाली नहीं करनी चाहिए। अर्थात त्रिपुटी से रहित ब्रह्ममात्र का साक्षात्कार करने पर नासिका के अग्र भाग के देखने की आवश्यक्ता नहीं रहती ॥ ५५-५६ ॥

देवाग्न्यागारे तरुमूले गुहायां-
वसेदसङ्गोऽलक्षितशीलवृत्तः ॥ ५७ ॥

अन्यों से अलक्षित शील और वृत्ति है जिसकी वह योगी असंग होता हुआ—देवालय में या अग्निशाला में या वृक्ष मूल में या गुहा में ब्रह्म रूप होता हुआ निवास करे ॥ ५७ ॥

निरिन्धन ज्योतिरिवोपशान्तो न चोद्विजेद्यत्रकुत्र ॥ ५८ ॥

जिस किसी स्थिति में भी ब्रह्ममात्र अपनी महिमा में स्थित हुआ सन्यासी इन्धन से रहित अग्नि की तरह शान्त हुआ उद्वेग को नहीं प्राप्त होता ॥ ५८ ॥

शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुर्योऽनूचानो
ह्यभिजज्ञौ ब्रह्मसमानः ॥५९॥

शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, विनीत भाव को प्राप्त हुआ योगी सबको ब्रह्म के समान जानता है अर्थात सब ब्रह्मरूप आत्मा ही है ऐसा समझता है ॥ ५९ ॥

त्यक्तैषणो ह्यनृणस्तं विदित्वा मौनी वसेदाश्रमे यत्र कुत्र ॥६०॥

वित्तैषणा-पुत्रैषणा-लोकैषणा से रहित-ब्रह्मचर्य यज्ञ प्रजोत्पादन रूप आप देव, पितृ, ऋण से मुक्त मुनि भाव को प्राप्त हुआ जिस किसी आश्रम में निवास करे ॥ ६० ॥

यमैश्च नियमैश्चैव ह्यासनैश्च सुसंयुतः ॥६१॥
नाडी शुद्धिं च कृत्वाऽऽदौ प्राणायामं समाचरेत् ॥६२॥

प्रथम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पांच यम और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, यह पांच नियमों से तथा सिद्ध स्वस्तिक पद्मादि आसनों से सुसंयुत हुआ नाड़ी शुद्धि करके गुरु के उपदेश से प्राणायाम करें। क्योंकि स्वयं आप प्राणायाम करने से हानि होने की सम्भावना रहती है ॥ ६१-६२ ॥

कर्णिकां धारयेच्च ह्यवधानेन चेतसा ॥ ६३ ॥

निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामं समाचरेत् ॥६४॥

सर्व चिन्ताओं का परित्याग करके संशय से रहित निर्विकल्प प्रसन्न आत्मा हुआ सावधान मन से प्राणायाम करे ।६३-६४॥

मरुदभ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत् ॥६५॥
इतरत्र न कर्तव्या मनोवृत्तिर्मनीषिणा ॥६६॥

योगी को चाहिये कि मन से युक्त सर्व प्राणायाम का अभ्यास करे और प्राणायाम से अतिरिक्त विषय में मन की वृत्ति नहीं करनी चाहिये ॥६५-६६॥

इस प्रकार यह ६६ महावाक्य मुमुक्षु पुरुषों के कल्याण के लिये विधि रूप से उपदिष्ट होने से विधि वाक्य कहे जाते हैं। यदि इसको कण्ठस्थ करके इसके अनुसार आचरण किया जाय तो विशेष लाभ हो। प्राय: यह सभी वचन निवृत्ति मार्ग में निष्ठ सन्यासियों के ही लिये हैं। अतएव सन्यासाश्रम को जिन्होंने ग्रहण किया है उनका यह परम कर्तव्य है कि इन वाक्यों के अनुसार आचरण करें। नहीं तो केवल नाम या वेष मात्र के धारण करने से कल्याण की प्राप्ति नहीं होती।

विवेकी पुरुषों के लिये इतना ही पर्याप्त है। इसी कारण विशेष तर्क वितर्क के द्वारा विस्तार से व्याख्या नहीं किया है किन्तु केवल भावार्थ ही लिखा गया है इसके बाद बन्ध मोक्ष के निरूपक वाक्यों का भावार्थ लिखा जायगा।

॥ इति प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ साद्धान्तिकबन्धमोक्षवाक्यानि

अब बन्ध मोक्ष के स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं :—

देहादीनान्मत्वेनाभिमन्यने सोभिमान आत्मनोबन्धः ॥१॥

जो देह इन्द्रिय मन, बुद्धि आदि को आत्मा मानकर मैं देह हूँ, मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ इत्यादि व्यवहार किया जाता है उसीका नाम अभिमान है और वही आत्मा का बन्ध है ॥ १ ॥

तन्निवृत्तिर्मोक्षः ॥२॥

उस अभिमान की निवृत्ति होना ही मोक्ष है। अर्थात देहादिकों से आत्मा को असंभव समझना ही मोक्ष है ॥ २ ॥

देवमनुष्याद्युपासनाकामसङ्कल्पो बन्धः ॥३॥

कामना बुद्धि से देवता, मनुष्य, यक्ष रक्षादिकों की उपासना करनी चाहिए—इस तरह का सङ्कल्प ही बन्ध है ॥ ३ ॥

कर्तृत्वाद्यहंकारसङ्कल्पो बन्धः ॥४॥

मैं कर्म का कर्ता और उसके फल का भोक्ता हूँ। इस प्रकार अहंभाव से युक्त सङ्कल्प बन्ध है ॥ ४ ॥

अणिमाद्यष्टैश्वर्याशासिद्धसङ्कल्पो बन्धः ॥५॥

अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, यह अष्ट ऐश्वर्य मुझको प्राप्त हो इस आशा से सिद्ध सङ्कल्प बन्ध है ॥ ५ ॥

यमाद्यष्टाङ्गयोगसङ्कल्पो बन्धः ॥६॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, यह अष्टाङ्ग योग साधन करना चाहिए यह सङ्कल्प बन्ध है ॥ ६ ॥

केवलमोक्षापेक्षासङ्कल्पो बन्धः ॥७॥

अविद्यारूपी बन्ध से मेरी मुक्ति हो। इस तरह केवल मोक्ष के लिए संकल्प करना भी बन्ध है क्योंकि आत्मा नित्य मुक्त स्वरूप है। उसमें बन्ध मोक्ष की सिद्धि नहीं। अतएव केवल मोक्ष का संकल्प भी बन्ध है ॥ ७ ॥

सङ्कल्पमात्रसम्भवो बन्धः ॥८॥

बहुत कथन से क्या, सङ्कल्प मात्र की उत्पत्ति बन्ध है ॥ ८॥

नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारसुखदुःखविषय समस्तक्षेत्रममतावन्धक्षयो मोक्षः ॥९॥

मोक्ष का सङ्कल्प भी जब बन्ध रूप सिद्ध हो गया तब मोक्ष क्या है इस आकांक्षा के होने पर अब मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं। नित्य अनित्य वस्तु के विचार से अनित्य संसार में प्रगट हुए सुख दुःख विषय से पृथ निज देहादि समस्त क्षेत्रों में अहंता ममता ही बन्ध है। उसका क्षय होना ही मोक्ष है ॥ ९ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥१०॥
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥११॥

मनुष्य आदिकों का मन ही बन्ध मोक्ष का कारण है विषय में आसक्त मन बन्ध का कारण है और विषय से रहित मन मोक्ष का कारण है ॥ १०–११ ॥

ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥ १२ ॥

ममत्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः ॥ १३ ॥

जीव देह गेह पुत्र कलत्र आदि में ममता करने से ही बन्धन को प्राप्त करता है और ममता से रहित होने पर मुक्त हो जाता है। ममता करने से ही जीवत्व भाव को प्राप्त होता है और ममता के अभाव होने पर केवल निर्विशेष परमात्मा ही होता है ॥ १२-१३ ॥

स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसङ्कल्पाद्विमुच्यते ॥ १४ ॥

यह मुझको हो—यह तुझको हो इस सङ्कल्पवश से ही जीव बंधा है। आत्मा से अतिरिक्त कोई वस्तु सङ्कल्प योग्य नहीं है। इस विचार से सङ्कल्प से रहित होकर मुक्त हो जाता है ॥१४॥

द्रष्टा दृश्यवशाद्बद्धो दृश्याभावे विमुच्यते ॥ १५ ॥

द्रष्टा दृश्य के दर्शन से ही बंधा है दृश्य के अभाव होने पर मुक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

इच्छामात्रमविद्येयं तन्नाशो मोक्ष उच्यते ॥ १६ ॥

यह अविद्या इच्छामात्र है उसका नाश ही मोक्ष कहा जाता है ॥ १६ ॥

भोगेच्छामात्रको बन्धस्तत्त्यागो मोक्ष उच्यते ॥१७॥

मोक्ष की इच्छा होना ही बन्ध है। और उसका त्याग ही मोक्ष है ॥ १७ ॥

चिच्चैत्यकलितो बन्धस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते ॥ १८ ॥

चेतन स्वरूप आत्मा का और देहादि दृश्य जड़ प्रपञ्च का सम्बन्ध ही बन्ध है। और उससे रहित होना ही मुक्ति है ॥१८॥

अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्था परिग्रहः ॥ १९ ॥
विषयादिकों का स्वीकार ही दुःख है। और उनकी उपेक्षा करना ही मोक्ष है ॥ १९ ॥

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ॥२०॥
जीव कर्म से ही बंधता है और ज्ञान से मुक्त होता है ॥२०॥

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद् भ्रंशोऽहन्त्ववेदनम् ॥२१॥
स्वरूप में स्थित होना ही मोक्ष है। और उससे पतित होना बन्ध है ॥ २१ ॥

चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष उच्यते ॥२२॥
चित्त के चञ्चल होने पर ही संसार है और उसके निश्चल होने पर मोक्ष है ॥ २२ ॥

बद्धो हि वासनाबद्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः ॥२३॥
जो वासना से बंधा है वही बद्ध है और वासना का क्षय होना ही मोक्ष है। अर्थात् जिसकी वासना क्षय हो गई वह मुक्त है ॥२३॥

पदार्थभावनादार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते ॥२४॥
संसार के पदार्थों के लाभ के लिये दृढ़ चिन्तन ही बंध है ॥ २४ ॥

वासनातानवं ब्रह्मन् मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २५ ॥
हे ब्रह्मन्, वासना का अभाव ही मोक्ष कहा जाता है ॥२५॥

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले ।।२६
सर्वाशा सङ्क्षये चेतः क्षयो मोक्ष इतीष्यते ।।२७

इस प्रकार का मोक्ष पाताल आकाश भूतल में नहीं है किन्तु चित्त से कल्पित सर्व आशा के क्षय होने पर जो चित्त का क्षय होता है उसी का नाम मोक्ष है ।। २६–२७ ।।

मोक्षो मेऽस्त्वति चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः ।।२८
मननात्थे मनस्येष बन्धः सांसारिको मतः ।।२९

मन के अन्दर मोक्ष मुझको हो यदि ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई तो मन विक्षिप्त हो जाता है । मनके विक्षिप्त होने पर ही बन्ध मनमें होता है । इसीको संसार सम्बन्धी बन्ध कहते हैं ।। २८–२९ ।।

तदमार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम् ।।३०
तत्प्रमार्जनमात्रन्तु मोक्ष इत्यभिधीयते ।।३१

इस मनका शोधन न करना ही महा संसार भाव को प्राप्त हुआ महाबन्ध है । और इस मन का शुद्ध करना मात्र ही मोक्ष इस शब्द से कहा जाता है । अर्थात् मन के शुद्ध होने पर अपने आप ही मोक्ष प्रगट होता है ।। ३०–३१ ।।

इस प्रकार इस प्रकरण में बन्ध मोक्ष के स्वरूप का वर्णन मुमुक्षुओं के हित के लिये किया है क्योंकि बिना दोनों के स्वरूप को जाने त्याग ग्रहण नहीं हो सकता । अतएव जो कोई संसार दावानल से संतप्त होकर उससे छुटकारा पाने का अभिलाषु हो उसका परम कर्तव्य है कि प्रथम बन्ध मोक्ष के स्वरूप

को जाने और जानकर उसको चित्त में आरूढ़ करै पुनः बन्ध से छूटने का प्रयत्न करै।

संक्षेप में बन्ध का स्वरूप अज्ञानजनित संसार के नाना प्रकार के पदार्थों में राग ही है। क्योंकि यदि राग निवृत्त हो जाय तो किसी प्रकार का दुःख सुख होवे नहीं। दुःख सुख से रहित होना ही मोक्ष है। जब तक संसार के पदार्थों के सम्भोग से सुख दुःख होता है। तब तक मोक्ष कदापि नहीं प्राप्त हो सकता। अतएव राग निवृत्ति के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। राग की आत्यन्तिक निवृत्ति ज्ञान से ही होती है। जिसको ज्ञान की प्राप्ति हुई है वही उत्तम पुरुष है। जिसने ज्ञान का सम्पादन नहीं किया उसका जन्म निरर्थक है। अतएव अगले प्रकरण में अज्ञानियों के निन्दा बोधक वचन कहेंगे।

॥ इति द्वितीय प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ अविद्वन्निन्दावाक्यानि

अब अज्ञानियों के निन्दा-बोधक वचनों का उल्लेख करते हैं—

अथ योऽन्यांदेवतामुपासतेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीतिन-
स वेद यथा पशुः ॥१

वह ईश्वर अन्य है। मैं जीव अन्य हूँ। ऐसा मान कर जो पुरुष अपने से भिन्न देवता की उपासना करता है। वह कुछ नहीं जानता जैसा पशु होता है वैसी ही उसकी दशा है॥ १॥

अत्र भिदामिवमन्यमानः शतधासहस्त्रधाभिन्नो मृत्योः
समृत्युमाप्नोति २

इस भेद से रहित ब्रह्म में जो पुरुष जगत, जीव, ईश्वर साक्षि का परस्पर भेद की तरह मानता हुआ स्वाधिष्टित शरीर के साथ सैंकड़ों प्रकार से हजारों प्रकार से प्रतिक्षण भिन्न होता है। वह बार बार जन्म मरण रूप परम्परा को प्राप्त करता है। अर्थात घटी यन्त्र की नाईं विश्रान्ति से रहित हुआ निरन्तर संसार में भ्रमण किया करता है। कभी सुखी नहीं होता ॥२

कर्तृत्वाद्यहंकारभावनारूढो मूढः ॥३

मैं कर्ता हूँ। मैं भोक्ता हूँ इत्यादि अहंकार की भावना वाला अज्ञानी है ॥ ३

मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥४

जो इस ब्रह्म में नाना प्रकार के भेद की तरह देखता है वह बार बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ४

अनुनुभूति विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते ॥५
प्रतिबिम्बतशाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ॥६

जलाशय में प्रतिबिम्बत आम्र की डाल में लटकते हुए फल के रसास्वाद के समान अज्ञानी मैं ब्रह्म हूँ इस अनुभव के बिना वृथा ही ब्रह्माभास विषयानन्द में आनन्दित होता है ॥ ५-६

अष्टाङ्गञ्च चतुष्पदं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम् ॥७
ओङ्कारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः ॥८

अकार, उकार, मकार, अर्धमात्र, बिन्दु, कला, कलातीत, तत्पर भेद से अष्ट अङ्ग और विश्व, तैजस प्राज्ञ तुर्य विराट, सूत्र कारण ईश्वर तुर्य भेद से चतुष्पाद कैलास वैकुण्ठ ब्रह्मलोक भेद से, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति भेद से त्रिस्थान। ब्रह्म विष्णु रुद्र, ईश्वर सदा शिवभेद से पञ्च दैवत रूप ओंकार अपना आत्मा स्वरूप है ऐसा जो नहीं जानता वह ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण नहीं होता ॥ ७-८

अति वर्णाश्रमं रूपं सच्चिदानंदलक्षणम् ॥९
यो न जानाति सोऽविद्वान्कदामुक्तो भविष्यति ॥१०

वर्णाश्रम आदि देह के धर्म हैं। इनसे परे सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को जो नहीं जानता है वह अज्ञानी कब मुक्त होगा। अर्थात् कभी नहीं ॥९-१०

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ॥११
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥१२

जो विषयासक्त ब्रह्माकारवृत्ति से हीन पुरुष ब्रह्म की वार्ता में कुशल भी हैं, वे अज्ञानता से पुनः २ संसार में जन्म मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। यह निश्चय है ॥११-१२

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ॥१३

जिस सन्यासी ने ज्ञानदण्ड से रहित केवल काष्ठ दण्ड को ही धारण किया है, वह ज्ञानस्वरूप से रहित हुआ। केवल उदर भरने वाला सर्व भक्षी होता है ॥ १३

स्नायत्तमे क्रान्तदितं स्वे.दिजतत्यागवेदनम् ॥१४

यस्य दुष्करतां यातं धिकृतं पुरुषकीटकम् ॥१५

जिस पुरुष को व्याख्यान अत्यन्त उपकारक निज इच्छित विषय के त्याग का ज्ञान अशक्य है उस पुरुषरूपी तुच्छ कीड़े को धिक्कार है। अर्थात् जो स्वाभिलषित विषयों का त्याग नहीं कर सकता वही नीच पुरुष है ॥१४-१५

अद्वितीयं ब्रह्म तत्वं न जानन्ति यदा तदा ॥१६
भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क मुक्तिः क्वेह वा सुखम् ॥१७

साधक जब अद्वितीय ब्रह्म तत्व को नहीं जानते तब वे सभी भ्रान्त होते हैं। उनको इस संसार में मुक्ति कहां अथवा सुख कहां, अर्थात् कहीं नहीं ॥१६-१७

अज्ञानोपहतो बाल्ये यौवने वनिता हतः ॥१८
शेषे कलत्रचिन्तार्तः किं करोतिनराधमः ॥१९

यह अधम मनुष्य बाल्य अवस्था में अज्ञान के कारण अपने इष्ट के चिन्तन में समर्थ नहीं होता। अतएव अज्ञान से उसकी बुद्धि नष्ट होती है। ऐसा लोग कहते हैं और यौवन अवस्था में स्त्री के वश हुआ अन्धे के समान अपने इष्ट को नहीं देखता। वृद्धावस्था में कलत्र आदि के चिन्ता से पीड़ित हुआ क्या करे अर्थात् अपने श्रेय का कुछ भी साधन नहीं कर पाता इस तरह वृथा ही आयु व्यतीत हो जाती है ॥१८-१९

इच्छा द्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन जन्तवः ॥२०
धरा विवरमग्नानां कीटानां समतां गताः ॥२१

साधक प्राणी इच्छा द्वेष से समुत्पन्न सुख दुःखादि द्वन्द्व मोह से मूढ़ हुए पृथ्वी के छिद्र में मग्न कीट की समता को प्राप्त हुए हैं ॥२०–२१

इस तरह जिन प्राणियों ने इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके आत्मज्ञान का सम्पादन नहीं किया वे संसार में निष्फल जीवन को व्यतीत करते हैं। उनका जीवन मरण बराबर ही है। उन्हीं की निन्दा इस प्रकरण में की गई है। अतएव आत्म ज्ञान की प्राप्ति करना सबका परम कर्त्तव्य है। क्योंकि वही सत्य है उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए ही अगले प्रकरण में जगत् के मिथ्यात्व के प्रतिपादक वाक्यों का कथन करेंगे।

॥ इति तृतीय प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादकवाक्यानि

अब इस जगत के मिथ्यात्व प्रतिपादक वाक्यों का उल्लेख करते हैं :—

नान्यत्किञ्चन मिषत् ॥१

ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी स्थावर जङ्गम नहीं है॥१

वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥२

जैसे घट शराव आदि नाम मात्र से ही भेद वाले हैं। केवल वाणी से ही कथन किये जाते हैं कि यह घट है, यह शराव है। परन्तु विचार दृष्टि से सब में एक मृत्तिका ही सत्य है। तैसे ही यह समस्त दृश्य कार्यवर्ग नाम मात्र है। केवल वाणी के ही व्यापार का विषय है वास्तव में तो ब्रह्म ही सत्य है ॥२

अतोऽन्यदार्तम् ॥३

ब्रह्म से अन्य समस्त जगत् मृत्यु से पीड़ित है। अतएव नश्वर होने से मिथ्या है ॥३

न तु तद्द्वितीयमस्ति ॥४

उस ब्रह्म से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है ॥४

नात्र काचन भिदाऽस्तिनैव तत्र काचन भिदाऽस्ति ॥५

इस जीव में काम सङ्कल्पादि रूप से कोई भेद नहीं है और उस परमात्मा में विश्व विराडादि रूप से कोई भेद नहीं है ॥५

सर्वं विकारजातं मायामात्रम् ॥६

सभी कार्यवर्ग सांसारिक वस्तु मिथ्या है ॥६

सर्वत्र न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिः ॥७

अखण्ड एक रस ब्रह्म में द्वैत रूप प्रपञ्च की सिद्धि नहीं है ॥७

नास्ति द्वैतं कुतो मर्त्यम् ॥८

जब जगत्, जीव, ईश आदि भेद से द्वैत नहीं है, तब उसके अन्तर्गत भेदविशिष्ट मरणशील वस्तु कहां रह सकती है क्योंकि द्वैत से ही भय रहता है। ऐसी श्रुति है ॥८

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः ॥९

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥१०

यदि संसार विद्यमान हो—तो ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं है इस प्रकार के ज्ञान से उसकी निवृत्ति हो। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। किन्तु यह द्वैत मायामात्र है। अर्थात् मिथ्या

है परमार्थ में द्वैत नहीं है अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी हुआ नहीं ॥९-१०

विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केन चित् ॥११
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥१२

यदि किसी ने जगत्‌रूपी विकल्प की कल्पना की हो तो इसकी निवृत्ति भी हो सकती है। किन्तु केवल उपदेश के लिए ही गुरु शिष्यादिकों की कल्पना है। तत्व के साक्षात्कार होने पर द्वैत नहीं रहता। यह निश्चित सिद्धान्त है। अर्थात् गुरु शिष्य आदि का जो वाद है वह ज्ञान के पूर्व कल्पना मात्र है, ज्ञान होने पर वह वाद भी निवृत्त हो जाता है ॥११-१२

द्वितीयकारणाभावादनुत्पन्नमिदं जगत् ॥१३

ब्रह्म से अतिरिक्त कारण के अभाव होने से यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ ॥१३

यथेदं नभः शून्यं जगच्छून्यं तथैव हि ॥१४

जैसे यह आकाश शून्य है, तैसे ही यह जगत् भी शून्य ही है क्योंकि ब्रह्म से भिन्न कुछ हुआ ही नहीं ॥१४

इदं प्रपञ्च यत्किञ्चिद्यज्जगति वीक्ष्यते ॥१५
दृश्यरूपञ्च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत् ॥१६

यह प्रपञ्च, संसार में जो कुछ सत्यत्व रूप से व्यवहारिक रूप से और प्रातिभासिक रूप से, घटादि दृश्य रूप से और इन्द्रियादि दृग् रूप से देखा जाता है वह सब शश के शृङ्ग के समान मिथ्या है। ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥१५-१६

इदं प्रपञ्चं नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितञ्जगत् ।१७

यह प्रपञ्च नहीं है, न उत्पन्न हुआ, न स्थित है, न नष्ट है अर्थात् तीन काल में भी नहीं हुआ. ऐसा समझना चाहिये ॥१७

चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा ॥१८

प्रपञ्च के ज्ञान का मूल चित्त है। वह भी सर्व काल में नहीं है, नहीं है, नहीं है ॥१८

मायाकार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि ॥१९

ब्रह्मज्ञान होने पर माया के कार्य आदिक नहीं हैं और माया भी नहीं है। अतएव भय भी नहीं है ॥१९

परं ब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो नहि ।२०

मैं परब्रह्म हूँ इस प्रकार स्मरण करनेपर मन भी नहीं है ॥२०

वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्त्विदञ्जगत् ॥२१

यदि वन्ध्या के पुत्र के क्रूर वचन से भय हो, तो यह जगत् हो अर्थात् जैसे वन्ध्या पुत्र का वचन असत्य है वैसे यह जगत भी है ॥२१

शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतश्चेज्जगदस्ति तत् ॥२२

यदि शशा के शृङ्ग से नागेन्द्र मारा जाय तो यह जगत सत्य हो ॥२२

मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत् ।२३

यदि मरु मरीचिका के जलपान से कोई तृप्त हो तो यह जगत भी सत्य हो सकता है ॥२३

गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥२४

सुषुप्ति अवस्था में प्रतीत होने वाला यदि गन्धर्व नगर सत्य हो तो यह जगत् भी सत्य हो सकता है ॥२४

मासादूर्ध्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत् ॥२५

महीने से पहिले मरा हुआ यदि मनुष्य आ जाय, तो यह जगत् भी सत्य है ॥२५

गगनेनीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ॥२६

आकाश की नीलिमा यदि सत्य हो तो जगत् भी सत्य हो ॥२६

गोस्तनादुद्भवं क्षीरं पुनरारोपणे जगत् ॥२७

यदि गौ के स्तन से निकला हुआ दूध पुनः उसी मार्ग से वहां स्थापन किया जाय, तो जगत् भी हो सकता है ॥२७

ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेदस्त्विदं जगत् ॥२८

यदि अग्नि के ज्वालामण्डल में कमल की वृद्धि हो तो यह जगत् भी सत्य हो ॥२८

ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेदस्त्विदं जगत् ॥२९

ब्रह्मज्ञानी के हृदय की बात यदि अज्ञानी जान जाय तो यह जगत् भी सत्य हो ॥२९

ब्रह्मकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि ॥३०

ब्रह्मा की कुक्षि में जगत् नहीं है। और आत्मा की कुक्षि में जगत् नहीं है। अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब तक जगत् नहीं है ॥३०

सर्वदा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥ ३१

सदा भेदज्ञान विशिष्ट द्वैत अद्वैत रूप जगत् नहीं है ॥३१

नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहि ॥ ३२

यह सब जगत् नहीं है—नहीं है। गुरु शिष्यादिक भी नहीं हैं ॥३२

सच्चिदानन्द मात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ॥३३

मैं सच्चिदानन्द स्वरूप ही हूं इस प्रकार का निश्चय जिसकी बुद्धि में हो गया, उसके लिए यह जगत् अनुत्पन्न ही है। अर्थात् कभी नहीं हुआ ॥३३

इस प्रकार जगत के मिथ्यात्व बोधक अनेकों वाक्यों के द्वारा यह सिद्ध किया कि जगत् कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ एक अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म ही है। अतएव संसार की जो दृढ़ भावना मिथ्या ज्ञान के कारण हो रही है। उसकी निवृत्ति विवेक द्वारा जगत् के मिथ्यात्व निश्चय से ही होती है। जब तक जगत् को मिथ्या नहीं समझा जायगा तब तक संसार में सुख की उपलब्धि हो ही नहीं सकती—क्योंकि परिपूर्ण सुख की प्राप्ति जगत् के अभाव में ही होती है। इसका अनुभव प्रति दिवस सबको सुषुप्ति में होता है। जितना सुख सुषुप्ति में प्राप्त होता है उतना जाग्रत में कभी भी नहीं प्राप्त होता, सुषुप्ति का सुख विषयजन्य नहीं। क्योंकि वहां कोई भी विषय रहते नहीं। सर्व विषय तथा विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियां कारण में लय हो जाती हैं। अतएव सुषुप्ति का सुख निर्विषय है यह सर्वानुभवसिद्ध है। परन्तु उस समय भी

आनन्द स्वरूप का आवरक अज्ञान रहता है। अतएव परिपूर्ण सुख नहीं मिलता। इस अज्ञान की निवृत्ति वेदान्त वाक्यों से होती है। प्रायः जगत् के निरासक बोधक वाक्यों के बाद उपदेश वाक्यों का निरूपण अगले प्रकरण में करेंगे जिससे अज्ञान की निवृत्ति हो जायगी।

॥ इति चतुर्थप्रकरणम् ॥

अथ उपदेशवाक्यानि।

अब उपदेश वाक्यों का उल्लेख करते हैं—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं—
स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो ॥१

हे श्वेतकेतु, जो यह अणुरूप है वह परमात्मा ही है। उस परमात्मा ही का स्वरूप यह सब जगत् है। वह परमात्मा ही सत्य है। वह अणिम रूप आत्मा तुम, वह परमात्मा हो। इस से जगत् जीव परमात्मा की एकता सिद्ध हुई। यह एकता बाध समानाधिकरण न्याय से होती है। अर्थात् जगत् भाव और जीव भाव को बाध कर देने पर जो शेष सत्य स्वरूप से रहता है वही ब्रह्म का स्वरूप है ॥१

अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि ॥२

हे जनक! तुम अभय को ही प्राप्त हुए हो। अर्थात् तुम ब्रह्म ही हो। इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२

ब्रह्मचर्यमहिंसाञ्चापरिग्रहञ्च सत्यञ्च यत्नेन—
हे रक्षतो हे रक्षतो हे रक्षत इति ॥३

हे शिष्यो तुम लोग बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार के ब्रह्मचर्य "अष्ट" प्रकार के मैथुन का परित्याग करना बाह्य ब्रह्मचर्य है। और ब्रह्म का अनुसन्धान करना आन्तर ब्रह्मचर्य है। दर्शन स्मरण (स्पर्शन) केलि, एकान्त भाषण, संकल्प, निश्चय और क्रिया निर्वृति, यह अष्ट प्रकार का मैथुन है। ¹ अहिंसा किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाने को कहते हैं। अर्थात् मन वचन कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न देने का नाम अहिंसा है। प्राण धारण मात्र से अतिरिक्त वस्तु का स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है। जैसा देखा सुना विचारा हो वैसा ही अन्यों के प्रति कहने का नाम सत्य है इनकी यत्न से रक्षा करो रक्षा करो रक्षा करो। अर्थात् ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह सत्य की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिये क्योंकि इनकी रक्षा से ही सर्व वस्तु की सुलभता होती है ॥३

तत्त्वमसि त्वं तदसि ॥४ तत्त्वमस्यवाक्यविचार

वह ईश्वर तुम हो। तुम वह ईश्वर हो। अर्थात् तत् पद का वाच्य, अर्थ जो सर्वज्ञ सर्व शक्ति विशिष्ट ईश्वर और त्वंपद का वाच्य अर्थ जो अल्पज्ञ अल्प शक्ति विशिष्ट जीव-इन दोनों में एकता असम्भव होने से भागत्यागलक्षणा के द्वारा केवल चेतन मात्र की एकता का बोधिका यह श्रुति है। अतएव तत् और त्वं

पद का लक्ष्य ब्रह्म ही है। जैसे "सोऽयं देवदत्तः" इस पद में लक्ष्य देवदत्त है। लक्ष्यांश में ही एकता वा त्यागांश में नहीं ॥४

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ॥५
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६

जो ब्रह्म मन से नहीं जाना जाता जिस ब्रह्म से मन जाना जाता है। उसी ब्रह्म को तुम जानो। जिसकी उपासना लोग इदं शब्द वाच्य दृश्य रूप से करते हैं वह ब्रह्म नहीं है। क्योंकि ब्रह्म तो सब का द्रष्टा साक्षी है वह दृश्य कभी होता नहीं ॥५-६

यत्परं ब्रह्मसर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ॥७
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्। ८

हे शिष्य जो परब्रह्म सबका आत्मा है और समस्त विश्व का आधार है। तथा सर्वत्र व्यापक होने से सब से बड़ा है। और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और नित्य है। वह तुम्हीं हो और तुम्ही वह हो अर्थात् तुम्हारे और उसके लक्ष्य स्वरूप में कोई भेद नहीं ॥७-८॥

अन्तः पूर्णो वहिः पूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे। ९
अन्तः शून्यो वहिः शून्यः शून्यः कुम्भ इवाम्बरे॥१०

जैसे समुद्र में और आकाश में घट बाहर भीतर पूर्ण और शून्य होता है। इसी तरह परमात्मा सर्वः पूर्ण और सब से शून्य स्थित है अर्थात एक परमात्मा ही पूर्णरूप से विराजमान है दूसरा कोइ तत्व नहीं है ॥९-१०॥

मा भवग्र ह्य भावात्मा ग्राहकात्मा च मामव ॥ ११
भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव १२

शरीरादि सम्पूर्ण विषय ग्राह्य और उनका कारक मानस वृत्तियों का समूह ग्राहक है। इन दोनों ग्राह्य ग्राहक का परित्याग करके उनसे पृथक् हो जाओ उनका स्मरण मत करो और सम्पूर्ण वासना का परित्याग करके जो शेष ब्रह्मस्वरूप है तन्मय हो। अर्थात् वही तुम हो तुमसे अलग ब्रह्म नहीं ॥११-१२॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह ॥१३
दर्शन प्रथमाभासमात्मानं केवलं भज ॥ १४

द्रष्टा जीव दर्शन घटादि विषयक ज्ञान दृश्य घटादि विषय, इन सबको सम्पूर्ण वासनाओं के सहित त्याग कर ज्ञानस्वरूप केवल आत्मा का ही सेवन करो ॥१३-१४॥

चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशञ्च तृतीयकम् । १५
द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं महामुने । १६

आकाश तीन प्रकार का है—चित्ताकाश, चिदाकाश और आकाश। इन तीनों में चित्ताकाश और भूताकाश से अत्यन्त शून्य है महामुनि—चिदाकाश को जानो ॥१५-१६॥

ध्यानतो हृदयाकाशे चितिचिच्चक्रधारया ॥ १७
मनो मारय निःशङ्क त्वां प्रबध्नंति नारयः ॥ १८

मैं ब्रह्म हूँ इस ध्यान से हृदयाकाश में स्थित जो उसका अवभासक चेतन उसमें आत्मज्ञानरूपी चक्र की धारा से मन

को निःशङ्क होकर लय करो। मन के लय होने पर उससे अधिक कोई भी शत्रु तुमको बांध नहीं सकता। क्योंकि मन ही सबका मूल है। मन के मरने पर शत्रु सभी मर जाते हैं। जैसे राजा के मरने पर अन्य सभी सैन्य के सिपाही कुछ नहीं कर पाते ॥१७-१८

भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम् ॥१९
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पस्थिरो भव ॥२०

प्रथम समस्त भोग की वासनाओं का परित्याग कर के तुम भेद की वासना को त्यागो। पश्चात्—संसार के भाव और अभाव का परित्याग कर के निर्विकल्प रूप से स्थिर हो ॥१९-२०

त्यज धर्ममधर्मञ्च उभे सत्यानृते त्यज ॥२१
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज ॥२२

श्रुति स्मृति विहित धर्म और श्रुति स्मृति निषिद्ध अधर्म को त्यागो और सत्य असत्य को भी त्यागो। सत्य असत्य का त्याग कर जिस अहङ्कार से उसका त्याग किया उस अहङ्कार को भी त्यागो। क्योंकि अहङ्कार ही सर्वानर्थों का मूल ॥२१-२२

आत्मन्यतीते सर्वरूपेऽथवा तते ॥२३
कोबन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥२४

आत्मा सर्व सांसारिक पदार्थों से अलग है। अथवा सब में आकाश के समान व्यापक है। इस आत्मा में बन्ध क्या अथवा मोक्ष क्या अर्थात् बन्ध मोक्ष दोनों आत्मा में नहीं हैं।

इस प्रकार आत्मा समस्त विषय से रहित है ऐसा मनन करो। अभिप्राय यह है कि आत्मा में वास्तविक बन्धन मोक्ष नहीं है केवल अज्ञान से ही बन्ध मोक्ष की प्रतीति होती है विवेक द्वारा आत्मा के स्वरूप को जान कर बन्ध मोक्ष रहित आत्मा का अनुसन्धान करना चाहिए ॥२३-२४

आशा यातु निराशात्वमभावं यातु भावना ॥ २५
अमनस्त्वं मनः यातु तवासंगेन जीवनः ॥ २६

सब जगह असंग रूप से जीवन निर्वाह करते हुये तुम जीवन्मुक्त की आशा निराशा भाव को प्राप्त हो। और भेदभावना भी अभाव को प्राप्त हो तथा मन भी संकल्प विकल्प से रहित अमन भाव को प्राप्त हो ॥२५-२६

एकमन्तररहितं चिन्मात्रममलं ततम् ॥ २७
खादप्यतितरां सूक्ष्मं तद्ब्रह्मासि न संशयः ॥ २८

सदा एक रूप से वर्तमान होने से एक रूप, उत्पत्ति प्रलय के अभाव से आदि अन्त रहित, ज्ञान मात्र निर्मल व्यापक आकाश से भी अति सूक्ष्म जो ब्रह्म है वही तुम हो इसमें कोई संशय नहीं ।२७-२८

रक्षका विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम् ॥ २९
संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ॥ ३०

प्रपञ्च के मायिक होने से विष्णु पालन करते हैं ब्रह्मा रचते हैं रुद्र संहार करते हैं। परमार्थ दृष्टि से यह सब मिथ्या है ऐसा निश्चय करो। २९-३०

५

मत्यक्तं नास्ति किंचिद्वा मत्यक्ता पृथिवी तु वा ॥३१
मयातिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु ॥३२

मुझ से त्यागा हुआ कुछ नहीं है। अथवा मुझसे त्यागी पृथ्वी अथवा मुझसे त्यागा हुआ जो जो पदार्थ है वह वह नहीं है ऐसा निश्चय करो ॥३१-३२

अनात्मेति प्रपञ्चोवा अनात्मेति मनोऽपिवा ३३
अनात्मेति जगद्वापि नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥३३

मायारूप अनात्मा है या नहीं है ऐसा विचार प्रथम विकल्प है। माया का कार्य मन है या नहीं है यह द्वितीय विकल्प है। मन का कार्य जगत् रूप अनात्मा है या नहीं है यह तीसरा विकल्प है। इन तीनों विकल्पों में अनात्मा के निषेध कर देने से सब का निषेध हो जाता है अतएव अन्त में यही कहा कि अनात्म पदार्थ है नहीं ऐसा निश्चय करो। अर्थात् आत्मा से भिन्न अनात्मा रूप माया नहीं है मन नहीं है जगत भी नहीं है ऐसा निश्चय दृढ़ करना चाहिए ॥३३-३४

आदिमध्यावसानेषु दुःखं सर्वमिदं यतः ॥ ३५
तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्वनिष्ठो भवानघ ॥३६

हे अनघ, जिस कारण से आदि मध्य और अन्त में यह जगत् नहीं है तिस कारण से सब को त्याग कर तत्व में स्थित हो। अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ ऐसी भावना करो ॥३५-३६

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरात्मविस्मृतेः ॥ ३७

कश्चिन्नावसरं दत्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ ३८

आत्मा की विस्मृति जिससे हो जाती है ऐसी निद्रा, लोकवार्ता, शब्दादि को कहीं भी अवसर न देकर मैं ब्रह्म हूँ इस भावना से निष्पन्न ब्रह्म को निज स्वरूप में सदा चिन्तन करो ॥३७-३८

सर्वव्यापारमुत्सृज्य, अहं ब्रह्मेति भावय ॥ ३९
अहं ब्रह्मेति निश्चित्य त्वहंभावं परित्यज ।४०

हे शिष्य, तुम प्रपञ्च सम्बन्धी समस्त व्यापार को त्याग कर मैं ब्रह्म हूँ ऐसी भावना करो। वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा निश्चय कर के अहंभाव को त्याग दो और ब्रह्म स्वरूप हो जाओ ॥३९-४०

घटाकाशं महाकाशं इवात्मानं परात्मनि ॥४१
विलाप्याखण्ड भावेन तूष्णीं भव सदा मुने ॥४२

हे मुनि जैसे घटाकाश महाकाश में विलीन हुआ महाकाश स्वरूप ही हो जाता है। इसी तरह आत्मा को परमात्मा में विलीन कर के अखण्ड भाव से निष्क्रिय हो जावो ॥४१-४२

चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च ॥४३
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति भावय ।४४

इस संसार में चेतन है। इस चेतन से कल्पित यह जगत् चेतन स्वरूप ही है। तुम हम और यह लोक सब चेतन हैं ऐसी भावना करो ॥४३-४४

सत्यचिद्घनमखण्डमद्वयं सर्वदृश्य रहितं निरामयम् ॥४५

यत्राद् [illegible] तदेवाहमिति मौनमाश्रय ।४६

जो यह अन्तर्विचार [illegible] दिन सब दृश्य शून्य अ-
हर रहित निर्मल अद्वितीय [illegible] है वह मैं हूँ ऐसी सदा
भावना करता हुआ निष्क्रिय हो जाओ ॥४५-४६

जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं जाति-
नीतिकुलगोत्रदूरगम् ॥४७
चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणं तत्सदाहमिति मौनमाश्रय ।४८

जो ब्रह्म जन्ममृत्यु सुख दुःख से रहित है और जाति नीति
कुल गोत्र से वर्जित है। और इस चिद्विवर्त जगत का कारण है
वह सदा मैं ऐसा निश्चय करके निष्क्रिय हो जाओ ॥४७-४८

पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम् ।४९
अद्वितीयपरसंविदात्मकं तत्सदाहमिति मौनमाश्रय ।५०

जो ब्रह्म पूर्ण व्यापक अद्वय अखण्ड चेतन सर्व भेद ज्ञान से
रहित अद्वितीय पर संविद् स्वरूप निर्विशेष शुद्ध ज्ञान है वह
सदा मैं हूँ ऐसा निश्चय करके निष्क्रिय हो जाओ ॥४९-५०॥

स्वात्मनोऽन्यतया भातं चराचरमिदं जगत् ।५१
स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा तदस्मीति विभावय ।५२

आत्मा के अज्ञान दशा में जो चर अचर स्वरूप संसार
आत्मा से भिन्न प्रतीत होता था। उसी स्वरूप के ज्ञान दशा
में अपने आत्मा से अभिन्न समझ कर मैं ही हूँ ऐसी भावना
करो ॥५१-५२॥

विलाप्य विकृतिं कृत्स्नां सम्भवव्यत्ययक्रमात् ॥५३
परिशिष्टञ्च सन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तय ॥५४

उत्पत्ति के विपरीतक्रम से समस्त विकृति को विलय करके परिशिष्ट चेतन मात्र सच्चिदानन्द स्वरूप है ऐसा चिन्तन करो। अभिप्राय यह है कि इस संसार की उत्पत्ति श्रुति में इस प्रकार से वर्णित है—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी इत्यादि।

आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और लय का क्रम यह है कि भूमि को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में आकाश को आत्मा में लय करो तब सबके लय करने पर जो शेष बचे वही सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है ऐसा निश्चय करो ॥५३-५४॥

इस प्रकार इस प्रकरण में समस्त वेदान्त का साररूप उपदेश वाक्यों का संग्रह है। जिसमें एक एक वाक्य ऐसे हैं यदि उनके भाव को अच्छी तरह से समझ लिया जाय तो बहु ग्रन्थों के अवलोकन की आवश्यकता ही न पड़े। परन्तु इनके अर्थ इतने गम्भीर हैं कि बिना श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के द्वारा समझे कोई भी समझने तथा समझाने में समर्थ नहीं हो सकता।

समस्त उपदेशों का सार यह है कि यह जीव सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं है। किन्तु उसी का स्वरूप है। ऐसा ही निश्चय करना चाहिये। अतएव अगले प्रकरण में

स्पष्ट रीति से जीव ब्रह्म की एकता प्रतिपादन करने वाले वाक्यों का वर्णन करेंगे।

॥ इति पञ्चम प्रकरणम् ॥

अथ जीवब्रह्मैक्यवाक्यानि।

अब जीव ब्रह्म के एकत्व प्रतिपादक वाक्यों का उल्लेख करते हैं—

स यश्चायं पुरुषे ।१
यश्चासावादित्ये ।२
स एकः ।३

उपदेश महावाक्यों को जो यथावत् रीति से नहीं जानने वाले हैं। उनको जीव और ब्रह्म में भेद की भ्रान्ति हो सकती है। उस भ्रान्ति के निवारण करने के लिए ही जीव ब्रह्म के एकत्व प्रतिपादक वाक्यों का कथन करते हैं।

जो परमात्म सर्वान्तरत्व रूप से प्रसिद्ध है वह और जो यह सर्व जीवों का अन्तरात्मा रूप से स्थित है और जो समस्त देवताओं के अन्दर स्थित है वह तत् पद का अर्थ रूप ईश्वर और त्वं पद का अर्थ रूप जीव। लक्ष्य स्वरूप से ऊँच नीच उपाधियों से रहित एक ही हैं ॥१-२-३

सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्स्यम् ।४

जो यह कथन है कि आत्मा ब्रह्म ही है और ब्रह्म आत्मा ही

है वह सत्य है इसमें किसी प्रकार का भी संशय नहीं करना चाहिए ॥४

तत्त्वं ब्रह्मासि । ५

हे शिष्य स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों देहों का प्रकाशक निर्विशेष ब्रह्म तुम्हीं हो ॥५

अहं ब्रह्मास्मि ॥६

हे गुरु, आप की कृपा से मैं निर्विशेष ब्रह्म हूँ ।

आवयोरन्तरं न विद्यते त्वमेवाहमहमेव त्वम् ॥७

अपनी भक्ति साधना के लिए भगवान भक्त के प्रति कहते हैं कि जो तुम भक्त हो वह मैं भगवान हूँ और जो मैं भगवान हूँ वह तुम भक्त हो । मुझ में और तुम में किसी प्रकार का भेद नहीं है ॥७

गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु ॥८

कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्वे एकी भवन्ति ॥९

प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु ज्योति, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म लोक, नाम, यह षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में वर्णित हैं । यहाँ कर्म को त्याग कर पञ्चदश कहा है क्योंकि कर्म का आगे प्रतिपादन किया है । यह पञ्चदश कला अपना अपना प्रकृति को प्राप्त हुई देवता अपने अपने देवभाव

को प्राप्त हुये । वह हिरण्यगर्भ और जीवात्मा सभी पर अव्यय अक्षर स्वरूप से एक हो जाते हैं ॥८-९

देहेन्द्रियमनःप्राणैः चिद्वृत्तिः स्थावरेऽपि च ॥१०

स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदाहृतम् ॥११

जिससे लोकरूप को देखते हैं । शब्द को सुनते हैं । गन्ध को सूंघते हैं, शब्द को कहते हैं, स्वादु और अस्वादु रस को जानते हैं वह प्रज्ञान कहा जाता है ।१०-११

चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ॥१२

चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्ममय्यपि ॥१३

जिससे चतुर्मुख ब्रह्मा और इन्द्रादि देवों से लेकर मनुष्य अश्व गो आदिकों में आकाश के समान अनुगत एक चैतन्य ब्रह्म ही है । अतएव मुझमें भी विद्यमान प्रज्ञान ब्रह्म ही है ॥१२-१३

परिपूर्णः परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि ॥१४

बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥१५

आकाश के समान परिपूर्ण परमात्मा ब्रह्मविद्या का अधिकारी इस स्थूल देह में बुद्धि उपलक्षित सूक्ष्म शरीर का साक्षिरूप से स्थित होकर प्रकाशमान अहं शब्द से कहा जाता है ॥१४-१५

स्वतःपूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ॥१६

अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥१७

इस संसार में स्वतः पूर्ण शुद्ध चैतन्य ब्रह्म शब्द से कहा गया है । अस्मि इस वाक्य के द्वारा एकत्व ज्ञान से मैं ब्रह्म हूँ यह निश्चय होता है ॥१६-१७

एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ॥१८
सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥१६

सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित नाम रूप से वर्जित सत् ब्रह्म इस जगत् की उत्पत्ति से पहले इस समय भी और प्रलय के बाद भी निर्विशेष ब्रह्मतत्त्व तत्पद का लक्ष्य है। ऐसा विद्वानों द्वारा कहा जाता है ॥१८-१६

श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम् ॥२०
एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥२१

इस तत्त्वमसि, आदि महा वाक्य में त्वं वेदान्त के अर्थ को सुनने वाला अधिकारी के देह इन्द्रिय आदि से परे वस्तु त्वं पद का लक्ष्य है ऐसा विद्वानों से कथन किया गया है असि, इस पद से तत् और त्वं पद के लक्ष्य की एकता ग्रहण कराई जाती है। तिस कारण से एकता का अनुभव करो। अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ ऐसा अनुसन्धान करना चाहिए ॥२०-२१

स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् ॥२२
अहङ्कारादिदेहान्तात्प्रत्यगात्मेति गीयते ॥२३

अयम् इस कथन से स्व प्रकाश और अपरोक्षत्व सिद्ध होता है। आत्मा— इस कथन से अहङ्कार से लेकर देह तक प्रपञ्च से भिन्न अन्तर आत्मा का कथन है ॥२२-२३

दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ॥२४
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥२५

मनन्त दृश्यमान जगत् का तत्व ब्रह्म शब्द से कहा जाता है। यह ब्रह्म स्वप्रकाश स्वरूप है यह ब्रह्म शब्द से कहा जाता है ॥२४-२५

मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः ॥२६
अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥२७

परमात्मा और जीव की उपाधी माया और अविद्या का परित्याग कर के ही, अखण्ड सत्-चित् आनन्द स्वरूप पर ब्रह्म लक्षित किया जाता है ॥२६-२७

हकारः खेचरी प्रोक्तस्त्वंपदञ्चेति निश्चितम् ॥२८
सकारः परमेशः स्यात्तत्पदञ्चेति निश्चितम् ॥२९

"हकार" खेचरी कहा गया है यह त्वं पद का अर्थ है। ऐसा निश्चित है। सकार परमात्मा है यह तत्पद का अर्थ है ऐसा निश्चित है ॥२८-२९

सकारो ध्यायते जन्तुर्हकारो हि भवेद्ध्रुवम् ॥३०

जीव यदि सकार स्वरूप परमात्मा का ध्यान करता है तो वह हकार स्वरूप जीव परमात्मा का स्वरूप ही हो जाता है ॥३०

आद्यो वा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वं पदार्थवान् ॥३१
तयोः संयोजनमसीत्यर्थं तत्त्वविदो विदुः ॥३२

आदि स्कार तत्पद का लक्ष्य अर्थ है। और मकार त्वं पद का लक्ष्य अर्थ है। दोनों का मिलाना असि शब्द का अर्थ है। इस तरह सोऽहं शब्द का अर्थ जीव और परमात्मा के एकत्व का

ही बोध कराता है। ऐसा राम शब्द का अर्थ तत्त्वज्ञ ही जानते है ॥३१-३२

नमस्त्वमर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते ॥३३

असीत्यर्थे चतुर्थी स्यादेवं मन्त्रेषु योजयेत् ॥३४

नमः शब्द से त्वं पदार्थ समझना चाहिए। राम शब्द से तत्पदार्थ कहा जाता है। ऐसा [illegible] और चतुर्थी, असि इस अर्थ में है। इस तरह इन मन्त्रों में जीव और ईश्वर की एकता ही प्रतिपादित है ऐसा निश्चय रूप से समझना चाहिए ॥३३-३४

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ॥३५

संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥३६

जैसे दूध दूध में, तेल तेल में, जल जल में डाला हुआ मिल कर एकता को प्राप्त करता है। वैसे आत्मज्ञानी आत्म में तल्लीन हुआ एकत्व को ही प्राप्त करता है ॥३५-३६

यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ॥३७

तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥३८

जैसे घट रूप उपाधि के नष्ट हुए उसके अन्दर का आकाश स्वयं आकाश स्वरूप ही हो जाता है। वैसे ही देहादि उपाधि के नष्ट होने पर ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥३७-३८॥

इस तरह इस प्रकरण में जीव और ब्रह्म के एकत्व प्रतिपादक

वाक्यों द्वारा दोनों की एकता का निश्चय कराया। समस्त प्रकरण का सार यही है कि जीव ब्रह्म का ही साक्षात स्वरूप है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिये।

अब अगले प्रकरण में इसी एकत्व को दृढ़ करने के लिये मननात्मक वाक्यों का वर्णन करेंगे। जिससे जीव और ब्रह्म की एकता अच्छी तरह दृढ़ हो जाय।

॥ इति षष्ठमकरणम् ॥

अथ मननवाक्यानि।

॥ अब मनन वाक्यों का पतिपादन करते हैं ॥

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ॥१

अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः ॥२

मैं अन्न हूँ-मैं अन्न हूँ मैं अन्न हूँ। मैं अन्न का भोक्ता हूँ मैं अन्न का भोक्ता हूँ-मैं अन्न का भोक्ता हूँ। इस प्रकार भोग्य और भोक्ता आत्मा ही है यह दृढ़ कराने के लिये ही श्रुति में तीन वार अन्न और अन्नाद शब्द आया है ॥१-२॥

अहंमनुरभवं सूर्यश्च ॥३

मैं ही मनु हुआ और सूर्य हुआ। अर्थात् सर्वरूप मैं हुआ हूँ मुझसे भिन्न कुछ नहीं है ॥३॥

अहमेवेदं सर्वममानि ॥४

यह सब विकल्पित पदार्थ मैं हूँ ॥४॥

यथा फेनतरङ्गादिसमुद्रादुत्थितं पुनः ॥५

समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते ॥६

जैसे समुद्र से उत्पन्न हुये फेन तरङ्गादि पुनः उस समुद्र में लीन होते हैं। तैसे मेरे अज्ञान से उत्पन्न हुआ संसार मुझमें ही लीन होता है। भावार्थ यह कि जिस अधिष्ठान से जो वस्तु उत्पन्न होती है उसी में वह लीन भी हो जाती है। जैसे रज्जु से उत्पन्न सर्प रज्जु में ही लय हो जाता है। वैसे ही यह जगत ब्रह्म में लय होता है ॥५-६॥

अनात्मदृष्टेरविवेकनिद्रामहंममस्वप्नगतिं गतोऽहम् ॥७

स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते स्फुटोक्तैर्गुरोर्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः ॥८

अनात्म दृष्टि से अविवेक निद्रारूपी अहं मम गति को प्राप्त हुआ जो मैं वह गुरु के स्फुट महावाक्यों के उपदेश से स्वरूप सूर्य्य के उदय होने पर प्रबुद्ध हुआ हूं।

अर्थात्–देहादिक अनात्म पदार्थों में अज्ञान से अहंता ममता जो मुझको पहिले प्राप्त हुई थी। वह अब आत्मा के साक्षात्कार होने पर निवृत्ति हो गई ॥७-८

प्राणश्चलन्तु तद्धर्मैः कामैर्वा हन्यतां मनः ॥

आनन्दबुद्धिपूर्णस्य मम दुःखं कथं भवेत् ॥१०

प्राण चाहे तो अपने धर्मों से चलायमान हों। मन चाहे कामों से हनन को प्राप्त हो आनन्द बुद्धि से पूर्ण मुझको दुःख कैसे हो। अर्थात्—प्राणों की स्वाशोच्छ्वास रूपा गति निरन्तर

होती रहे और अनेक प्रकार की कामनाएँ मनमें उत्पन्न होती रहें। किन्तु आत्मज्ञान रूपी आनन्द से पूर्ण मुझको कोई भी दुःख नहीं होता ॥९-१०

न मे बन्धो न मे मुक्तिर्न मे शास्त्रं न मे गुरुः ॥११
मायामात्रविकासत्वान्मायातीतोऽहमद्वयः ॥१२

मुझमें न बन्ध है न मोक्ष है और मोक्ष के साधन गुरु शास्त्र भी नहीं है। क्योंकि यह सब माया का विकास है मै माया से परे अद्वय रूप हूं ॥११-१२॥

आत्मानमञ्जसा वेद्मि क्वाप्यज्ञानं पलायितम् ॥१३
कर्तृत्वमपि मे नष्टं कर्तव्यं वापि न क्वचित् ॥१४

मैं अपने आत्मा को अनायास से ही जानता हूं। मेरा अज्ञान भी कहीं चला गया। और कर्तापना भी नष्ट हो गया। इस समय कहीं कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥१३-१४॥

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नाम सौन्दर्यजातयः ॥१५
स्थूलदेहगता ह्येते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि ॥१६

ब्राह्मणत्व कुल गोत्र नाम सुन्दरता जाति, ए सब स्थूल देह के धर्म है। स्थूल देह से भिन्न मुझ में पूर्वोक्त कोई भी धर्म नहीं ॥१५-१६

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यं कामक्रोधादयोऽखिलाः ।१८
लिङ्गदेहगता ह्येते ह्यलिङ्गस्य न विद्यते ।१८

भूख पियास अन्ध बाधिर्य काम क्रोध आदि सम्पूर्ण धर्म

लिङ्ग देह के हैं। मैं लिङ्ग देह से अलग हूँ अतएव मुझमें ए कोई भी धर्म नहीं ॥१७-१८

जडत्वप्रियमोदत्वधर्माः कारणदेहगाः ॥१९
न सन्ति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः ॥२०

जड़ता, प्रियता, मोदता आदि धर्म कारण शरीर के हैं। नित्य निर्विकार स्वरूप मेरे धर्म ए नहीं है ॥१९-२०

चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम ॥२१
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत् ॥२२

चेतन रूप होने से मुझ में जड़ता नहीं—सत्य स्वरूप होने से असत्यता नहीं। आनन्दस्वरूप होने से मुझ में दुःख नहीं। किन्तु अज्ञान से ही यह सब सत्य के समान प्रतीत होता है ॥२१-२२

नाहं देहो जन्ममृत्यू कुतो मे नाहं
प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ॥२३
नाहं चेतः शोकमोहौ कुतो मे नाहं
कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥२४

मैं स्थूल देह नहीं—अतएव जन्म मरण कहाँ मुझ में मैं प्राण नहीं, अतएव मुझ में भूख पियास कहाँ। मैं चित्त नहीं अतएव शोक मोह मुझ में कहाँ, मैं कर्ता नहीं अतएव बन्ध मोक्ष मुझ में कहाँ। अर्थात् मुझ में ए कोई भी धर्म नहीं हैं ॥२३-२४

आनन्दमन्तर्निजमाश्रयन्तमाशा-
पिशाचीमवमानयन्तम् ॥२५
आलोकयन्तं जगदिन्द्रजालमापत्कथं
मां प्रविशेदसङ्गम् ॥२६

अन्तःकरण में निज स्वरूप भूत आनन्द का आश्रय करता हुआ आशारूपी पिशाची का तिरस्कार करता हुआ जगत को इन्द्रजाल के समान मिथ्या देखता हुआ। मुझ असङ्ग को आपत्ति कैसे स्पर्श कर सकती है। अर्थात् कदापि नहीं ॥२५–२६

देवार्चनस्नानशौचभिक्षादौ वर्ततां वपुः ॥२७
तारं जपतु वाक् तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम् ॥२८
विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् ॥२९
साक्ष्यहं किञ्चिदप्यत्र न कुर्वे नापि कारये ॥३०

शरीर, स्नान, शौच, देवार्चन, भिक्षा आदि कर्म में प्रवृत्त हो वाणी प्रणव का जाप करे वैसे ही वेदान्त का पाठ करे। बुद्धि विष्णु का ध्यान करे अथवा ब्रह्मानन्द में निमग्न हो। मैं साक्षी इसमें न कुछ करता हूँ न कराता हूं ॥२७–२८–२९–३०

ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं द्रष्टव्यमद्भुतम् ॥३१
विश्रान्तोऽस्मि चिरं श्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्ति किञ्चन ॥३२

जो जानने योग्य निविशेष ब्रह्म है वह इस समय हमने जान लिया जो देखने योग्य अद्भुत है वह हमने देख लिया। आत्मा के अज्ञान दशा में अपने से अतिरिक्त पदार्थों के ज्ञान से

चिरकाल से श्रान्त था। इस समय आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है ऐसा जानकर परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूं ॥३१-३१

न भूतं न भविष्यच्च चिन्तयामि कदाचन ॥३३

न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनोऽन्यत्राहं क्वचित् ॥ ३४

मैं भूत भविष्य वर्तमान का कभी चिन्तन नहीं करता हूं। न किसी की स्तुति करता हूं न निन्दा करता हूँ। क्योंकि आत्मा से अन्य कहीं कुछ भी नहीं देखता हूँ ॥३३-३४

अलेपकोऽहमजरो नीरागः शान्तवासना ॥ ३५

मैं प्रपञ्च से विलक्षण होने के कारण असंग हूं। स्थूल देह से विलक्षण होने के कारण अजर हूँ। सब अनर्थों का मूल सूक्ष्म देह से पृथक् होने के कारण मैं राग से रहित शान्त वासना होने के कारण ब्रह्म ही हूँ ॥३५

स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ॥३६

न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः ॥३७

परिपूर्ण आत्मा से अतिरिक्त जगत् जीव ईश्वर माया आदि कुछ भी नहीं है। उनसे विलक्षण शुद्ध रूप मैं हूँ ३६-३७

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥३८

यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥३९

जैसे महाप्रलय के समुद्र से सब विश्व पूर्ण हो जाता है। तैसे मुझ से यह संसार पूर्ण है। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूं, कहां जाऊँ, क्या ग्रहण करूं, क्या त्याग करूं। अर्थात्—पूर्ण

६

ब्रह्म स्वरूप होने से मैं कुछ भी क्रिया नहीं करता हूँ किन्तु आ
सदा रहता हूँ ॥३८-३९

इस प्रकार जीव ईश्वर के एकत्व मनन रूपी वाक्यों द्वा
शुद्ध निर्गुण आत्म रूप ब्रह्म का निश्चय कराया। सार य
कि ब्रह्म स्वरूप आत्मा में न तो किसी प्रकार की क्रिया है
किसी प्रकार का दोष है। वह शुद्ध निर्मल सर्व दोषों से र
है इसी बात का सदा मनन करना चाहिये। इस मनन के
होने पर ही जीवन्मुक्ति के विलक्षण सुख की प्राप्ति होती
अतएव अगले प्रकरण में जीवन्मुक्ति के प्रतिपादक वाक्यों
वर्णन किया जायगा क्योंकि बिना जीवन्मुक्ति के स्वरूप को ज
उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ होता है।

॥ इति सप्तमप्रकरणम् ॥

अथ जीवन्मुक्तिवाक्यानि

अथ जीवन्मुक्ति के प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं—

स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा
ज्ञातिभिर्वा वयस्यैर्वा नोपजनं स्मरन्निदं शरीरम् ॥१

अकस्मात् प्राप्त हुए पूर्व कृतकर्मों के फल को भोगता हु
अथवा स्त्रियों के साथ में क्रीड़ा करता हुआ—वाहन ज्ञाति अ
मित्रों के साथ रमण करता हुआ स्त्री पुरुषों के उपभोग से उत्प
हुआ जो यह शरीर, इसका स्मरण न करता हुआ जो स्थित

वह ब्रह्मज्ञानी अपनी महिमा में ही परिपूर्ण रीति से स्थित होता है। अर्थात्—जीवन्मुक्त हो जाता है ॥१

स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्म-रतिरात्मक्रीडः, आत्म मिथुन आत्मानन्दः स्वराड्भवति ॥२

वह यह ब्रह्मज्ञानी ही अपने आत्मा के आवरण को देखता हुआ। इस प्रकार भेद की प्रतीति को मानता हुआ। इस प्रकार अवास्तव रूप से संसार को जानता हुआ। आत्मरति आत्मक्रीड आत्म मिथुन स्वराड् होता है। अर्थात् एक अद्वैत तत्व के साक्षात्कार से द्वैतप्रपञ्च को न देखता हुआ अपने आत्मानन्द में ही निमग्न रहता है ॥२

ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायश्च ससाधनेभ्यो व्युत्थाय निरागारानिष्परिग्रहा अशिखा अय-ज्ञोपवीता अन्धाबधिरा मुग्धा क्लीवामूका उन्मत्ता इव परि-वर्तमानाः शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समाहिता आत्मानन्दः प्रणवमेव परं ब्रमात्मप्रकाशं शून्यं जानन्त-स्तत्रैवपरिसमाप्ताः ॥३

स्ववर्णाश्रम लक्षण साधन के सहित पुत्रैषणा, धनैषणा, लोकै-षणा का सन्यास कर के, अनिकेत (मकान के बिना) शरीर धारण से अतिरिक्त परिग्रह से शून्य, शिखा से रहित, यज्ञोपवीत से रहित, ब्रह्म से अतिरिक्त रूप को न ग्रहण करने से बधिर, विषयों में वैचित्यता प्राप्त होने से मुग्ध, काम विकार न उत्पन्न

होने से क्लीव, लौकिक वार्ता से रहित होने के कारण मूक अन्ध होने के समान, सर्वत्र स्थित हुए। मन को वश में करने से शान्त, बाह्यइन्द्रियों को वश में करने से दान्त, सब कर्मों से निवृत्त होने से उपरत, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को सहन करने से तितिक्षु एकाग्र मन होने से समाहित, अतएव आत्म रति, आत्म क्रीडा आत्म मिथुन आत्मानन्द को प्राप्त हो कर प्रणव को ही अज्ञानात्मप्रपञ्च अन्य से शून्य जानते हुये प्रजापति के शिष्य देवता अक्षर भाव को प्राप्त हुए ॥३

कुचेलोऽसहाय एकाकी समाधिस्थ आत्मकाम आप्तकामोनिष्कामो जीर्णकामो हस्तिनि सिंहे दंशे मशके नकुले सर्पराक्षसगन्धर्वे मृत्यो रूपाणि विदित्वा न विभेति कुतश्चनेति ॥४॥

जीर्ण कौपीन कन्था धारण करने से कुचेल स्वदेह के अतिरिक्त सहायक के अभाव से असहाय अतएव एकाकी (अकेला रहने का स्वभाव) समाधि में स्थित होने से समाधिस्थ केवल आत्मा की कामना करने से आत्म काम, सर्व कामनाओं के प्राप्त होने से आप्त काम, अतएव निष्काम, क्षुत्पिपासा निवृत्ति विषय से अतिरिक्त विषयों की अभिलाषा से रहित संन्यासी निखिल अभिमान त्याग पूर्वक हस्ति, सिंह, दंश मशक, नकुल सर्प राक्षस, गन्धर्व आदि अज्ञानियों के भय के हेतु होने पर भी मृत्यु के वास्तविक स्वरूप को जानकर किसी से भी भय नहीं करता। अर्थात सर्व जगत् का संहारक मृत्यु का मृत्यु परमात्मा

के स्वरूप को साक्षात्कार करके सर्व भय से विनिर्मुक्त हो जाता है। क्योंकि जब तक द्वैत प्रपञ्च की प्रतीति होती है। तब तक ही भय होता है। परमात्मा के स्वरूप साक्षात्कार के अनन्तर द्वैतरूप प्रपञ्च रहता ही नहीं। अतएव भय भी किसी का नहीं होता ॥४॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य निर्ममो निरहङ्कारोभूत्वा ब्रह्मिष्ठं शरणमुपगम्य तत्त्वमसि सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादि महावाक्यार्थानुभवज्ञानाद्ब्रह्मैवाहमस्मि—इति निश्चित्य निर्विकल्प-समाधिनास्वतन्त्रो यतिश्चरति ससंन्यासी स मुक्तः स पूज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः स ब्राह्मण इति ॥५॥

जो सन्यासी सर्व धर्मों को त्याग कर दण्ड कमण्डलु आदि में भी ममता से रहित तथा देह इन्द्रिय आदि में अहङ्कार से रहित होकर ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य के शरण को प्राप्त होकर उन श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य महानुभावों के मुख से "तत्त्वमसि" (तुम वह हो) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (यह सब ब्रह्म है) नेह नानास्ति किञ्चन (इसमें नाना कुछ भी नहीं है) इत्यादि महावाक्यों के अर्थों के अनुभव ज्ञानपूर्वक निर्विकल्प समाधि से ब्रह्म ही मैं हूँ ऐसा निश्चय करके स्वतन्त्र विचरता है वही जीवन्मुक्त, पूज्य, योगी परमहंस अवधूत ब्राह्मण है। ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥५॥

जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशति तत्वं परित्यज्यषड्विंशक परमात्माऽहमिति

निश्चयात् जीवन्मुक्तो भवति ॥६॥

पञ्चविंशकतत्व (पच्चीसवाँ तत्व) जीव निज कल्पित चतुर्विंशति (चौबीस) तत्व का परित्याग करके षड्विंशक तत्व (छब्बीसवां तत्व) परमात्मा मैं हूँ ऐसा निश्चय करके जीवन्मुक्त होता है ॥६॥

तुरीयमक्षरमिति ज्ञात्वा जागरिते सुषुप्त्यवस्थापन्न इव यद्यच्छ्रुतं यद्यद्दृष्टं तत्सर्वमविज्ञातमिव यो वसेत्तस्य स्वप्नावस्थायामपि तादृगवस्था भवति सजीवन्मुक्तो भवति ॥७

तुरीय अक्षर ब्रह्म है ऐसा जान कर जाग्रत अवस्था में जो जो सुना और जो जो देखा उन सबको अविज्ञात सुषुप्ति अवस्था प्राप्ति के समान जो बसता है। उस ब्रह्मज्ञानी की स्वप्न अवस्था में भी वैसी अवस्था होती है। जिस अवस्था के प्राप्त होने से ही वह जीवन्मुक्त होता है ॥७

सकृद्विभातसदानन्दानुभवैकगोचरो ब्रह्मवित् विद्वांश्चक्षुरादि वाह्य प्रपञ्चोपरतः सर्वं ब्रह्मदात्मत्वेन पश्यन्नात्मेति भावयन् कृत्यकृत्यो भवति ॥८

सकृत विभात सदानन्द अनुभव के ही एक गोचर ब्रह्मवित विद्वान चक्षु आदि बाह्य प्रपञ्चों से उपरत हुआ सब जगत् को

आत्मा रूप से देखता हुआ सब आत्मा ही है ऐसी भावना करता हुआ कृतकृत्य होता है ॥८

निर्द्वन्द्वः सदाचञ्चलगात्रः परमशान्तिं स्वीकृत्य नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेत्यखण्डानन्दः पूर्णः कृतार्थः परिपूर्ण परमाकाशमग्नमनः प्राप्तोन्मन्यवस्था संन्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गोऽनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जः परिपक्वकैवल्यफलोऽखण्डानन्दनिरस्तसर्वक्लेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति कृत्यो कृत्यो भवति ॥९

ब्रह्मज्ञानी शांत तृष्णा सुख दुःख के अभाव से निर्द्वन्द्व, विषयों की प्रेरणा से रहित होने से अचञ्चल शरीर अपने से अतिरिक्त वस्तु के अभाव होने से परम शान्ति को स्वीकार कर के नित्य शुद्ध परमात्मा मैं ही हूँ इस दृढ़ अनुभव से अखण्डानन्द पूर्ण कृतार्थ परिपूर्ण परम आकाश स्वरूप ब्रह्म में निमग्न मन, मन से रहित दशा को प्राप्त समस्त इन्द्रिय वर्गों का सन्यासी अनेक जन्मों के अर्जित पुण्य समूह के परिपाक से प्राप्त कैवल्य रूपी फल, अखण्डानन्द के अनुभव से निरस्त सर्व दुःख समूह मैं ब्रह्म हूँ ऐसा समझ कर कृतकृत्य होता है। अर्थात इस संसार में उस के लिए कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता ॥९

ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनवरतं ब्रह्म प्रणवानुसन्धानेन ।
यः कृत्यकृत्यो भवति स परमहंसपरिव्राट् ॥१०

निरन्तर ब्रह्म रूप प्रणव के अनुसन्धान से अर्थात मैं ब्रह्म हूँ

इस निश्चित ज्ञान से जो कृतकृत्य होता है। वह परमहंस परिव्राजक जीवन्मुक्त है ॥१०

भावाभावकलाविनिर्मुक्तः सर्वसंशयध्वस्तः।
पूर्णाहं भावः कृत्यकृत्यो भवति ॥११

भाव और अभाव कला से रहित सर्व संशय से रहित पूर्ण ब्रह्म भाव को प्राप्त होने से मैं ही यह सब हूँ इस प्रकार पूर्ण अहं भाव से कृत्य कृत्य होता है ॥११

प्राणोह्येषसर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्
भवतेनातिवादी ॥१२

यह परमात्मा सब भूतों से उपलक्षित हुआ प्रतीत होता है विद्वान मैं यह आत्मा हूँ ऐसा जानता हुआ अतिवादी नहीं होता है अर्थात मितभाषी हो जाता है ॥१२

आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष
ब्रह्मविदांवरिष्ठः १३

जो विद्वान आत्मा में ही क्रीडा तथा रति करता है वह क्रियावान ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ है ॥१३

निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ॥१४
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्यः शुकादयः ॥१५

शुक आदि ब्रह्म ऋषि नित्य मुक्त सनकादि और ब्रह्मा आदि देवता जैसे अर्ध निमेष भी ब्रह्माकार वृत्ति के बिना नहीं स्थित होते। वैसे ही जीवन्मुक्त भी ब्रह्माकार वृत्ति के बिना अर्ध

अर्ध निमेष भी स्थित नहीं होते ॥१४-१५

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः ॥१६
सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ १७

जो अध्यात्म मे रति करने वाला है। वह विषयों की अपेक्षा से रहित समस्त सङ्कल्प रूप जाल से रहित शीत उष्ण आदि सर्व द्वंद्वों से रहित स्थित हुआ ब्रह्म में ही स्थित है ॥१६-१७

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलान्यसहायता ॥ १८
समताचैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ १९

जलपान के लिये कपाल और निवास के लिये वृक्षमूल शीत निवारण के लिये जीर्ण कन्था कौपीन आदि भय से रहित होने के कारण अन्य की सहायता से रहित सर्वत्र सच्चिदानन्द ब्रह्म की भावना से समता ही रहती है। यह सब जीवन्मुक्त के लक्षण हैं ॥१८-१९

स्वप्नेऽपियोहि युक्तः स्यात् जाग्रतीव विशेषतः ॥२०
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥१२

जाग्रत् अवस्था की तरह स्वप्न में भी जो विशेष समाहित रहता है। जाग्रत और स्वप्न में मैं ब्रह्म हूँ—इस प्रकार मनन करने वाला पुरुष ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ और वरिष्ठ होता है ॥२०-२१

निर्मानश्चानहङ्कारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः ॥२२
आत्मक्रीड आत्मरतिरात्मवान् समदर्शनः ॥२३

मान अपमान से रहित होने से निर्मान, देहादि में अहङ्कार से शून्य होने से निरहङ्कार शीत उष्ण आदि द्वन्द्व से रहित होने से निर्द्वन्द्व मैं ब्रह्म ही हूँ इस निश्चयात्मक बुद्धि से सन्देह से रहित अपने से अतिरिक्त आदि की अपेक्षा से रहित होने के कारण आत्मा में ही क्रीड़ा और रति जिसकी है। वह आत्मज्ञानी समदृष्टि जीवन्मुक्त है ॥२२–२३

स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा च

दृष्ट्वा ज्ञात्वा च शुभाशुभम् ॥ २४

न हृष्यति न ग्लायति यः स शान्त इति कथ्यते ॥२५

श्रेय रूप शुभ और अश्रेय रूप अशुभ अपने से अतिरिक्त नहीं है ऐसा ज्ञान होने पर स्मरण कर के स्पर्श कर के भोजन कर के देख कर या शुभ की प्राप्ति से न प्रसन्न होता है और अशुभ की प्राप्ति से न सोच करता है। इस प्रकार का व्यवहार जिसका होता है वही शान्त कहा जाता है ॥२४-२५

अप्राप्तं हि परित्यज्य सम्प्राप्ते समतांगतः ॥ २६

अदृष्टखेदाखेदो यः स शान्त इति कथ्यते ॥ २७

जो प्राप्त नहीं है वह प्राप्त करना चाहिए इस इच्छा का परित्याग कर के और भाग्यवश से वस्तु के प्राप्त होने पर यही पर्याप्त है इस प्रकार समता को हुआ इष्ट की प्राप्ति या अप्राप्ति में जो सुखी दुःखी नहीं होता वह जीवन्मुक्त सन्तुष्ट कहा जाता है ॥२६–२७

नाकृतेन कृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः ॥ २८

निर्मन्थन इवाम्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितः ॥ २९

ब्रह्मज्ञानी का निषिद्ध कर्मों के आचरण से तथा विहित कर्मों के आचरण से कोइ प्रयोजन नहीं और कर्म उपासना ज्ञानकाण्ड को प्रतिपादन करने वाली श्रुति स्मृतिरूप विशेष भ्रान्ति से भी कोइ प्रयोजन नहीं है। वायु आदि से न चलाये हुए समुद्र के समान वह ब्रह्मज्ञानी जैसे पूर्व प्रयोजन से रहित था वैसे ही श्रुतिस्मृति भ्रान्तियों से भी अनाकुलित रहता है ॥२८-२९

सम्यग्ज्ञानावबोधेन नित्यमेकसमाधिना ॥ ३०

सांख्य एवावबुद्धा ये ते सांख्या योगिनः स्मृताः ॥३१

जो योगी सम्यक् ज्ञान के अवबोध के प्रवर्तक नित्य केवल समाधि से जिसमें ब्रह्म जाना जाता है वह सांख्य परमाद्वैत शास्त्र है इसमें ज्ञान वाले जो योगी हैं वे सांख्य कहे जाते हैं। वे ही जीवन्मुक्त हैं ॥३०-३१

प्राणाद्यनिलसंशान्तौ युक्त्या ये पदमागताः ॥३२

अनामयमनाद्यन्तं ते स्मृता योगयोगिनः ॥३३

श्रुति और शुद्ध गुरु से उपदिष्ट युक्ति से प्राणादि व्यापार के उपरम होने पर जो निरुपद्रव आदि अन्त से शून्य पद को प्राप्त हुये है एक लक्ष्य स्वरूप में ही जिनका चित्त लगा है वे योग योगी जीवन्मुक्त कहे जाते हैं ॥३२-३३

सुखदुःखदशाधीरं मा स्यान्नोद्धरन्ति यम् ॥ ३४
निश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदुः ॥ ३४

जैसे सुमेरु पर्वत को श्वास और उच्छ्वास नहीं चलाते तैसे ही शांत उष्ण सुख दुःखादि जिस और ब्रह्मनिष्ठ को समता से नहीं चलाते उस ब्रह्मनिष्ठ का चित्त मरा हुआ समझना चाहिए और जिसका चित्त मरा है वही जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥३४-३५

वाचामतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः ॥ ३६
परमानन्दरसास्वादो रमते स्वात्मनात्मनि ॥ ३७

जो वाणी से अतीत विषय सुख दुःख दशा से रहित परमानन्द रस के आस्वादन से विषयानन्द के प्रति अचलित चित्त होता है। वह विद्वान् अखण्डाकार वृत्ति वाले निज अन्तःकरण से अपने आप ही में रमण करता है ।।३६-३७

निर्ग्रन्थिः शान्तसंदेहो जीवन्मुक्तो विभावनः ॥ ३८
अनिर्वाणोऽपि निर्वाणश्चित्रदीप इवस्थितः ३९

जड़चेतन का अविवेक ही ग्रन्थि है विवेक द्वारा जिसने उस ग्रन्थि का भेदन किया है उसको निग्रन्थि कहते हैं। ग्रन्थि के छूट जाने से ही संशय की शान्ति होगई है जिसको वह अपने से अतिरिक्त भावना से रहित जीवन्मुक्त कैवल्य मोक्ष को न प्राप्त हुआ भी कैवल्य मोक्ष को प्राप्त ही है। क्योंकि जीवन्मुक्ति में इस कैवल्य मुक्ति की समता होती है इसमें दृष्टान्त देते हैं। वह जीवन्मुक्त चित्र में स्थित दीप के समान स्थित होता है ॥३८-३९

निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ॥४०
नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ॥४१
कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ॥४२
शरीर्यप्यशरीरोऽसौ परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ॥४३
अध्यात्मरतिरासीनः पूर्णः पावनमानसः ॥४४

निर्धन होने पर भी सदा तुष्ट, असहाय होने पर भी महा बलवान, भोजन न करने पर भी ब्रह्मामृत रसास्वादन से सदा तृप्त, असम होने पर भी सर्वत्र समदर्शी नित्यादि कर्मों का कर्ता हुआ भी कर्तृत्व के अभिमान से रहित होने के कारण कुछ भी नहीं कर्ता। दूसरों की दृष्टि से सुख दुःखादि प्रारब्ध कर्म के फलों को भोक्ता हुआ भी अपनी दृष्टि से कुछ भी नहीं भोक्ता यह योगी शरीरधारी होने पर भी शरीर के अभिमान से रहित होने के कारण शरीर से रहित, परिच्छिन्न होने पर भी सर्व व्यापक अध्यात्म शास्त्र में रति अपनी महिमा में स्थित हुआ पूर्ण पवित्र मानस जीवन्मुक्त होता है ॥४०-४१-४२-४३-४४

नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः ॥४५
न समाधानजाप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः ॥४६

जिस ब्रह्मनिष्ठ का मन वासना से रहित होता है उसको निः स्मृति में कहे हुये कर्मों से कोई प्रयोजन नहीं। और उन कर्मों के त्याग से भी कोई प्रयोजन नहीं। समाधि और प्रणवादि के जाप से भी कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि जीवन्मुक्त को ब्रह्ममात्र

दृष्टि होती है। अन्यथा कर्मादि से प्रयोजन नहीं। परन्तु प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त स्ववर्णाश्रम के कर्तव्य कर्मों को करता है ॥४५-४६

जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥४७

न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति ॥४८

ब्रह्मज्ञानी सर्व प्रपञ्चरूप जगत् जीवादि को देखता हुआ भी उनको वैसा नहीं देखता किन्तु ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है इस विचार से चिद्रूप ब्रह्मवस्तु को ही देखता है। क्योंकि ब्रह्म से भिन्न असत् है ॥४७-४८

अहमन्नं सदान्नाद इति हि ब्रह्मवेदनम् ॥४९

ब्रह्मविद् ग्रसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैव तु ॥५०

ब्रह्मज्ञानी मैं कर्मफल और उसका भोक्ता हूँ ऐसा जानता है। यही ब्रह्मज्ञान है। इस ब्रह्मज्ञान से सब को ब्रह्मरूप से ही ग्रस लेता है। अभिप्राय यह है कि जिस समय ब्रह्म का साक्षात्कार होता है उस समय एक ब्रह्म ही शेष रहता है। और सर्व का अभाव हो जाता है ॥ ४९-५०

समाधिमथकर्माणि मा करोतु करोतु वा ।५१

हृदयेनात्तसर्वेहो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥५२

जिसने विचार बुद्धि से सर्व वासनाओं को त्याग दिया है वह समाधि अथवा श्रुतिस्मृति में कथित कर्म को करे या न करे उत्तम अन्तःकरण वाला वह जीवन्मुक्त ही है ॥५१-५२

अक्षरत्वाद्वरेण्यत्वाद् धूतसंसारबन्धनात् ॥५३
तत्त्वमस्यादिलक्ष्यत्वादवधूत इतीर्यते ॥ ५४

अक्षर, वरण करने योग्य संसार बन्धन से रहित तत्त्वमसि आदि का लक्ष्य होने से अवधूत कहा जाता है ॥५३-५४

यो विलङ्घ्याश्रमान्वर्णानात्मन्येवस्थितः पुमान् ॥५५
अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतः स कथ्यते ॥ ५६

जो योगी पुरुष वर्ण और आश्रमों का उल्लंघन कर के आत्मा में ही स्थित होता है। वह वर्ण और आश्रम के आचार से रहित जीवन्मुक्त अवधूत कहा जाता है ॥५५-५६

यथा रविः सर्वरसान्प्रभुङ्क्ते
हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः ॥
तथैव योगी विषयान् प्रभुङ्क्ते
न लिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ५८

जैसे सूर्य सर्व रसों को अच्छी तरह भोक्ता है जैसे अग्नि भी सर्व पदार्थों का भक्षण करता है। तैसे ही योगी सर्व विषयों को भोगता है परन्तु शुद्ध होने के कारण पुण्य और पाप में लिप्त नहीं होता ॥५७-५८

केवलं सुमनः स्वच्छो मौनी मुदितमानसः ॥ ५९
सन्तोषामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः ॥६०
आत्मारामा महात्मानस्ते महापदमागताः ॥६१

सदा प्रसन्न चित्त मितभाषी अति स्वच्छ हृदय केवल ब्रह्मस्वरूप सुन्दर समता को प्राप्त जो ब्रह्मज्ञानी सन्तोष रूपी अमृत पान से तृप्ति को प्राप्त होकर शान्त हुआ है वह आत्माराम महात्मा महापद को प्राप्त हुआ है। अर्थात् जीवन्मुक्त हुआ है ॥५९–६०–६१

हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः ॥६२
न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६३

हर्ष शोक भय काम क्रोध कृपणता के ज्ञान से जो न प्रसन्न होता है न ग्लानि करता है वही जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥६२-६३

अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः ॥६४
तिष्ठति ध्येयसन्त्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६५

देहादि में अभिमानरूपी वासना को त्याग कर जो लीला से ही व्यवहार को करता हुआ स्थित होता है वह ध्येय का त्याग करने वाला जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥६४–६५

मौनवान्निरहंभावो निर्मानो मुक्तमत्सरः ॥६६
यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६७

मौनी अहंकार रहित मन की इच्छा से शून्य मत्सर से रहित और उद्वेग से रहित हुआ जो कर्म करता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥६६–६७

यावतीदृश्यकलना सकलेयं विलोक्यते । ६८
सा येन सुष्ठु सन्त्यक्ता स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६९

यह अविद्या और उसका कार्यरूप जितना सब संसार प्रतीत हो रहा है। उसको जिसने अच्छी तरह से त्यागा है वही जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥६८–६६

उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया ॥७०
न शोचते न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ।७१

उद्वेग और आनन्द से रहित समान स्वच्छ बुद्धि से स्थित हुआ जो न इष्ट की प्राप्ति में प्रसन्न होता है न अनिष्ट की प्राप्ति में विषाद करता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥७०–७१

सर्वेच्छाः सकलाः शङ्काः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः ॥७२
धिया येन परित्यक्ताः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥७३

अप्राप्त वस्तु की सब इच्छा, यह वस्तु है नहीं है ऐसे सम्पूर्ण सन्देह,प्राप्त वस्तु में बार बार भोग की सर्व चेष्टा देह मैं हूँ जीव मैं हूँ इत्यादि सब निश्चय, जिसने ब्रह्माकार परिणाम को प्राप्त हुई बुद्धि से त्याग दिया है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥७२–७३

जन्मस्थितिविनाशेषु सोदयास्तमयेषु च ॥७४
सममेव मनो यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ।७५

उदय और अस्तमय, जन्म स्थिति और विनाश में जिस का मन तुल्य ही रहता है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥७४–७५

सर्वाधिष्ठानचिन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि ।७६
यो जीवति गत स्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥७७

सर्व प्रपञ्च रूप आरोप का अधिष्ठान निर्विकल्प चिदात्मा को स्वस्वरूप से साक्षात् करने पर सर्वत्र स्नेह से रहित हुआ जाता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥७६-७७

क्रियानाशाद्भवेच्चिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः ॥७८
वासनाप्रक्षयो मोक्षः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥७९

फल की इच्छा से की गई क्रिया के नाश से चिन्ता का नाश होता है इससे वासना का क्षय, सर्व अनर्थ की मूल वासना के क्षय होने पर मोक्ष होता है। अतएव वासना का क्षय ही मोक्ष है जिसकी वासना क्षीण हो गई है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥७८-७९

निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ॥८०
सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥८१

संसार की कल्पना से रहित ज्ञान मात्र रूप अन्तःकरण की वृत्ति ब्रह्माकार परिणाम को प्राप्त हुई प्रज्ञा कही जाती है। जिस योगी की वह प्रज्ञा सदा रहती है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥८०-८१

देहेन्द्रियेष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके ॥८२
यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥८३

देह और इन्द्रिय आदि में अहंभाव और उससे अन्य विषयादि में इदं भाव (ममता होना) जिसके ये दोनों कहीं भी नहीं होते वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥८२-८३

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः ॥८४
प्रज्ञया जो विजानाति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥८५

जीव और ब्रह्म, और सृष्टि में भेद कभी नहीं है। इस को जो अपनी बुद्धि से जानता है। वही जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥८४–८५

साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन् पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः। ८६
समभेव भवेद्यस्य सजीवन्मुक्त उच्यते ॥८७

सज्जनों से पूजित हुआ भी और दुष्टों से पीड़ित हुआ भी जो समान ही रहता है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥८६–८७

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च। ८८
अस्तं गतं स्थितं व्योम सजीवन्मुक्त उच्यते ॥८९

सांसारिक व्यवहारवान होने पर भी जिस ज्ञानी के चित्त में ब्रह्म निरहंकार रूप से स्थित रहता है। जैसे घट शरावादि के नाश होने पर अथवा न नाश होने पर आकाश ज्यों का त्यों स्थित रहता है। उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥८८–८९

नोदेति नास्तमायाति सुखदुःखे मनः प्रभः। ९०
यथा प्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९१

जिसके मन की प्रसन्नता सांसारिक सुख के उदय होने पर अधिक विकासता को नहीं प्राप्त होती और सांसारिक दुःख के उदय होने पर मलीनता को नहीं प्राप्त होती वह जैसी स्थिति प्राप्त होती है उसमें समान रहने वाला ही जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥९०–९१

योजागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ॥९२
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९३

जो सुषुप्ति में स्थित हुआ भी जागता है। जिसके जाग्रत भी नहीं है जिसका मन वासना से रहित है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥९२-९३

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ॥९४
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९५

जो संसार की व्यवहारिक अवस्था में आवश्यकता अनुसार राग द्वेष भय आदि के अनुसार व्यवहार करता हुआ भी अन्दर आकाश के समान निर्मल रहता है॥ अर्थात् किसी में आसक्त नहीं होता वह जीवनमुक्त कहा जाता है ॥९४-९५

यस्य नाहं कृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥९६
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९७

जिसके देहादि में अहं भाव नहीं जिसकी बुद्धि कर्म करते पर भी उसमें लिप्त नहीं होती वह कर्म कर्ता हुआ अथवा अकर्ता हुआ भी जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥९६-९७

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥९८
हर्षामर्षभयान्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९९

जिस योगी से सांसारिक लोग घबड़ाते नहीं जो लोगों से नहीं घबड़ाता, जो स्वभाव से ही हर्ष भय ग्लानि से मुक्त है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥९८-९९

य: समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतल: ॥१००
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१०१
जो ज्ञानी अज्ञानी की नाईं शब्दादि विषयों में व्यवहार करता हुआ भी पूर्ण आत्मरूप से शीतल रहता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥१००-१०१

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् चित्तगतान्मुने ॥१०२
मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१०३
हे मुनि, जिस समय मुझ सर्व आत्मा में सन्तुष्ट हुआ मन की सर्व कामनाओं का परित्याग करता है। उस समय वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥१०२-१०३

चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने ॥१०४
अक्षुब्धचित्तोविश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१०५
क्षोभ से रहित चित्त हुआ दृश्य वर्जित शुद्ध चिन्मात्र परम पवित्र पद में जो विश्राम को प्राप्त हुआ है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥१०४-१०५

इदं जगदयं सोऽहं दृश्यजातमवास्तवम् ॥१०६
यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१०७
यह संसार है यह अन्य है वह मैं हूं इत्यादि मिथ्या भूत दृश्य समूह जिसके चित्त में प्रकाशित नहीं होता वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥१०६-१०७

शान्तसंसार कलना कलावानपि निष्कलः ॥१०८
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१०९

संसार की कलना जिसकी शान्त हो गई है जो कलावान होने पर भी वास्तव में कला से रहित है और चित्त के सहित होने पर भी चित्त से रहित है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥१०८–१०९

चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परं ॥११०
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१११

मैं चेतन पर आत्मा निर्गुण सब से परे हूं ऐसा जानकर जो केवल आत्मस्वरूप से स्थित होता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥११०–१११

देहत्रय विनिर्मुक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् ॥११२
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११३

स्थूल सूक्ष्म कारण देह से मैं अलग हूं और शुद्ध चेतन स्वरूप मैं हूं। जिसके हृदय में मैं ब्रह्म हूं यह अखण्डाकार वृत्ति उदय हुई है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥११२–११३

यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ११४
परमानन्द पूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११५

जिसके वास्तव में देहादिक नहीं है जिसको सर्वप्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप से निश्चय हुआ है। जो सदा परमानन्द से पूर्ण रहता है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥११४–११५

नित्यानन्दः प्रसन्नात्माह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥ ११६

किञ्चिदस्तित्वहीनोयः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११७

जो सदा आनन्द स्वरूप प्रसन्न आत्मा अन्य चिन्ता से रहित सब प्रपञ्चरूप अस्तित्व से शून्य है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥११६–११७

अहंब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेतिनिश्चयः ॥११८

चिदहं चिदहञ्चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ११९

मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ ऐसा जिसका निश्चय है और मैं चेतन हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं चेतन हूँ ऐसा जिसका निश्चय है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥११८–११९

इस प्रकार से इस प्रकरण में जीवन्मुक्तों के लक्षण एवं जीवन्मुक्ति स्वरूप का प्रतिपादन अति उत्तम रीति से किया गया है जिन महापुरुषों में ऐसे लक्षण पाए जायँ उनहीं को जीवन्मुक्त कहना चाहिए—ब्रह्मनिष्ठ, जीवन्मुक्त, गुणातीत, भक्त, इत्यादि शब्दों में ही भेद है इन सब के लक्षण एक ही समान होते हैं। जब तक लक्षण न मिलें तब तक केवल नाममात्र से कोई कुछ होता नहीं। अतएव स्वकल्याणाभिलाषियों को चाहिए कि इन उपरोक्त लक्षणों को अपने में सम्पादन करें। क्योंकि सिद्धों के जो स्वाभाविक लक्षण होते हैं। वही साधकों के साधन होते हैं अतएव शांकर भाष्यादिकों में यही कहा है। अब अगले प्रकरण में स्वानुभूति वाक्यों का

प्रतिपादन करेंगे जिससे ब्रह्मनिष्ठों के अनुभव का परिज्ञान अच्छी रीति से हो जायगा।

॥ इति अष्टमप्रकरणम् ॥

अथ स्वानुभूतिवाक्यानि

अब आत्मानुभव के वाक्यों का प्रतिपादन करते हैं—

योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥१

जो इस समस्त विश्व का अधिष्ठान भूत ईश्वर है वह इस क्षर अक्षर से विलक्षण पुरुषोत्तम होता है वही मैं जीव हूं इतने से तत्त्वमसि आदि महावाक्य से लक्षित जीव और ईश्वर की एकता निश्चित होती ॥१

यद्योऽहंसोऽसौयोऽसौसोऽहम् ॥२

इस देह में जो मैं जीव हूँ। वह परमात्मा है। और जो परमात्मा है वही मैं हूँ ॥२

तं शान्तमचलमद्वयानन्दचिद्घन एवास्मि ॥३

जो तत्त्वमसि आदि महावाक्यों से प्रतिपादित है उस शान्त अचल को जानकर मैं भी अद्वय आनन्द चिद्घन रूप ही हूँ। उस से अन्य नहीं ॥३

तत्पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मैवाहमस्मि ॥४

जो तत्पद का लक्ष्य परिपूर्ण आनन्द एक बोध स्वरूप है

शेष रहता है वह ब्रह्म ही मैं हूँ क्योंकि ब्रह्म से अतिरिक्त दूसरी वस्तु का अभाव है ॥४

त्वं वाहमस्मि भगवो देवतेऽहं वै त्वमसि ॥५

हे भगवान् सन्मात्र रूपी देवता तुम्हीं मैं हूँ और मैं ही तुम हो मुझ अन्तर स्वरूप और तुझ वाह्य स्वरूप में कोई भी भेद नहीं है ॥५

सच्चिदानन्दात्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोहमस्मि ॥६

मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ, अज हूँ और परिपूर्ण स्वरूप हूँ। अर्थात देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित हूँ ॥६

शुद्धाद्वैतब्रह्माहम् ॥७

अशुद्ध द्वैत के बाध करने पर शुद्ध अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ ॥७

वाचामगोचरनिराकारपरब्रह्मस्वरूपोऽहमेव ॥८

समस्त वचन वृत्तियों का अविषय निराकार परब्रह्म स्वरूप मैं ही हूँ ॥८

सदोज्ज्वलोऽविद्या तत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्या तमोमोहोहमेवाहमेवाहं तत्सद्यत्परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः सोहमेवा तद्रामभद्रः परंज्योती रसोहमोम् ॥९

सदा प्रकाश स्वरूप अविद्या और उसके कार्य से हीन अपने बन्ध का नाशक सर्वदा द्वैत से रहित आनन्द स्वरूप सर्व का अधिष्ठान सत् स्वरूप मैं हूँ। अविद्या, तम, मोह से रहित

मैं ही शुद्ध स्वरूप हूं और ओङ्कार का अर्थ जो ब्रह्म स्वरूप हैं वह मैं ही हूँ। जो तत्सत स्वरूप से विराजमान चिन् रूप परब्रह्म रामचन्द्र हैं वह मैं हूँ और जो कल्याण रूप से विराजमान पर ज्योतिरस स्वरूप है वह ब्रह्म मैं हूँ अर्था मुझ ब्रह्म से अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है ॥६

तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो। नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तसत्यपरमानन्दानन्ताद्वयपरिपूर्णः परमात्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि ॥१०

तत्पर परमपुरुष पुराण पुरुषोत्तम नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तसत्य परमानन्द अनन्त अद्वय परिपूर्ण परमात्मा ब्रह्म स्वरूप राम मैं हूँ ॥१०

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥११
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥१२

तीनों लोकों में जो भोज्य भोक्ता भोग हैं उनसे विलक्षण सर्व का साक्षी चेतन स्वरूप सदा शिव मैं हूँ। अर्थात् समस्त संसार का साक्षी शिव मैं ही हूँ ॥११-१२

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१३
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥१४

सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही उत्पन्न हुआ और मुझम ही सब स्थित है और मुझमें ही सब लय भाव को प्राप्त होता है। वह अद्वितीय ब्रह्म मैं ही हूँ ॥१३-१४

निर्वाणोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीप्सितः ॥१५
चिदात्मास्मि निरंशोऽस्मि परापरविवर्जितः १६

नित्य मोक्ष स्वरूप होने से मैं निर्वाण स्वरूप हूँ, मनोवृत्ति के अभाव होने से मैं चेष्टा से रहित हूँ। जगत-जीव ईश्वर आदि के अभाव होने से मैं अंश से रहित हूँ और सर्व इच्छा से रहित हूँ, चेतन रूप हूँ, निरंश हूँ। पर और अपर से रहित हूँ ॥१५-१६

ब्रह्मैवाहं सर्ववेदान्तवेद्यं नाहं वेद्यं
व्योमवातादिरूपम् ॥१७
रूपं नाहं नाम नाहं न कर्म ब्रह्मैवाहं
सच्चिदानन्दरूपम् ॥१८

सब उपनिषदों से जानने योग्य मैं ब्रह्म ही हूँ। आकाश, वायु आदि, वेद्य मैं नहीं हूँ। नाम रूप कर्म मैं नहीं हूँ किन्तु सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म ही मैं हूँ ॥१७-१८

नित्यशुद्धो बुद्धमुक्तस्वभावः सत्यः
सूक्ष्मःसन् विभुश्चाद्वितीयः ॥१९
आनन्दाब्धिर्यत्परः सोऽहमस्मि
प्रत्यग्धातुर्नात्र संशीतिरस्ति ॥२०

नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सत्य स्वरूप सूक्ष्म व्यापक अद्वैत आनन्द सिन्धु जो जीव से अभिन्न परमात्मा है वह परमात्मा मैं हूँ इसमें संशय नहीं है ॥१९-२०

सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ॥२१

आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावहम् ॥२२

जो सूर्य्य आदि स्थूल प्रपञ्च का प्रकाशक परं ज्योति रूप चित् रूप सूर्य्य है वह मैं हूँ। और चिदर्क ज्योति शिव मैं हूँ। स्वच्छ आत्म ज्योति मैं हूँ। यह ओंकार का अर्थभूत वस्तुओं के अन्दर व्यापक सर्व प्रकाशक मैं हूँ ॥२१-२२

द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षणः ॥२३

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥२४

द्वैत भाव से रहित अद्वैत रूप मैं हूँ। सच्चिदानन्द लक्षण शुद्ध बोध स्वरूप मैं हूँ। कार्य कारण से विनिर्मुक्त पूर्ण बोध स्वरूप केवल सदा शिव रूप मैं हूँ ॥२३-२४

निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि निराकृतिः ॥२५

निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः ॥२६

मैं क्रिया से रहित हूँ। विकार से रहित हूँ, तीन गुणों से रहित हूँ। आकार से रहित हूँ। विकल्प से रहित हूँ, नित्य हूँ। आलम्बन से रहित हूँ। अद्वैत स्वरूप हूँ ॥२५-२६

केवलाखण्डबोधोऽहमानन्दोऽहं निरन्तरः ॥२७

सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥२८

निर्विशेष अखण्ड बोध स्वरूप मैं हूँ। आत्मानन्द स्वरूप मैं हूँ। व्यवधान से रहित सत्य ज्ञान अनन्त स्वरूप जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ ॥२७-२८

केवलं चित्पदानन्दं ब्रह्मैवाहं जनार्दनः ॥२९

अशुभाशुभसंकल्पैः संशान्तोऽस्मि निरामयः ॥३०

निर्विशेष सच्चिदानन्द-ब्रह्म ही मैं हूँ। भक्तों के दुःखों का नाश करने वाला मैं हूँ। शुभ और अशुभ सङ्कल्पों से रहित नीरोग एवं उपद्रवों से रहित शान्त स्वरूप मैं हूँ ॥२९–३०

नष्टेष्टानिष्टकलनः संविन्मात्रपरोऽस्म्यहम् ॥३१

अन्तर्याम्यहमग्राह्योऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः ॥३२

इष्ट और अनिष्ट की कल्पना से रहित मैं केवल ज्ञान स्वरूप हूँ। सर्व का नियामक मैं हूँ। ग्रहण करने के योग्य मैं नहीं हूँ। अनिर्देश्य और अलक्षण स्वरूप मैं हूँ ॥३१–३२

अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः ॥३३

अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः ॥३४

स्वरूप के ज्ञान की दृष्टि से मैं अद्वैत स्वरूप हूँ जीव रूप से अपूर्ण हूँ। बाह्य और आभ्यन्तर से रहित हूँ। अद्वया नानन्द विज्ञानघन निर्विकार स्वरूप मैं हूँ ॥३३–३४

अविद्याकार्यहीनोऽहमवाङ्मनसगोचरः ॥३५

आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्घनः ॥३६

वाणी मन से अगम्य अविद्या और उसके कार्य्य से रहित मैं हूँ। आत्म चेतन स्वरूप मैं हूँ। आनन्द चिद्घन रूप मैं हूँ ॥३५–३६

आप्तकामोऽहमाकाशात् परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम् ॥३७

मैं आप्त काम आकाश से भी अधिक परिमाण होने से परमेश्वर स्वरूप हूँ ॥३७

चिदानन्दोऽस्म्यहंचेता चिद्घनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥३८

ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायान्

ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ३९

मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ। चेतन स्वरूप हूँ। चिद्घन चिन्मय हूँ। प्रकाश स्वरूप मैं हूँ। सर्व से श्रेष्ठ मैं हूँ। सूर्य्य आदि प्रकाशकों का भी प्रकाशक मैं हूँ ॥३८–३९

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः ॥४०

निर्मलो निर्विकल्पोऽहं निराख्योऽस्मि निश्चलः ॥४१

मैं नित्य हूँ दोष से रहित हूँ। निरञ्जन क्रिया से रहित हूँ निर्मल हूँ और विकल्प से रहित हूँ। नाम से रहित अचल स्वरूप हूँ ॥४०–४१

निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निस्पृहोऽस्म्यहम् ॥४२

निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥४३

मैं विकार से रहित नित्य शुद्ध गुण रहित स्पृहा से शून्य हूँ। इन्द्रिय से रहित सर्व का नियन्ता मैं हूँ कला से रहित निरपेक्ष स्वरूप मैं हूँ ॥४२–४३

पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ॥४४

पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥४५

मैं परमात्मा पुरुष हूं, मैं सबसे पुराना और उत्कृष्ट हूं।

पूर्णानन्द एव बोध स्वरूप मैं हूं। प्रत्यक् स्वरूप होने पर भी एक रस मैं हूं ॥४४-४५

प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः ॥४६
एकधा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥४७

स्व स्वरूप से मैं प्रज्ञान हूं। मैं प्रकाश प्रशान्त स्वरूप परमेश्वर स्वरूप हूं। ब्रह्मज्ञानियों से मैं एक प्रकार का ही चिन्ता का विषय हूं। मैं द्वैताद्वैत से विलक्षण निर्विशेष स्वरूप हूं ; क्योंकि द्वैत और अद्वैत दोनों सविशेष में ही होते हैं ॥४६-४७

शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तोऽस्मि
शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥४८
अहं सकृद्विभानोऽस्मि स्वेमहिम्नि सदा स्थितः ॥४९

निर्विकार होने से मैं शुद्ध हूं। स्वच्छ शान्त हूं। सदा वर्तमान हूं। शिव हूं। मैं सकृत् प्रकाश स्वरूप हूं। सदा अपनी महिमा में स्थित रहता हूं ॥४८-४९

सच्चिदानन्द मात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः ॥५०
मानावमानहीनोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥५१

मैं केवल सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ प्रकाश स्वरूप हूँ। ज्ञानघन हूँ। मान और अपमान से रहित हूं। निर्गुण स्वरूप हूँ। परम कल्याण स्वरूप हूँ ॥५०-५१

द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वन्दहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥५२

मैं द्वैत और अद्वैत से रहित हूँ। सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित हूँ वह परमात्मा मैं हूँ ॥५२

मैं आप्त काम आकाश से भी अधिक परिमाण होने से परमेश्वर स्वरूप हूँ ॥३७

चिदानन्दोऽस्म्यहचेता चिद्घनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥३८

ज्योतिर्मयोऽस्म्यह ज्यायान्

ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ३९

मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ। चेतन स्वरूप हूँ। चिद्घन चिन्मय हूँ। प्रकाश स्वरूप मैं हूँ। सर्व से श्रेष्ठ मैं हूँ। सूर्य्य आदि प्रकाशकों का भी प्रकाशक मैं हूँ ॥३८-३९

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः ॥४०

निर्मलो निर्विकल्पोऽहं निराख्योऽस्मि निश्चलः ॥४१

मैं नित्य हूँ दोष से रहित हूँ। निरञ्जन क्रिया से रहित हूँ निर्मल हूँ और विकल्प से रहित हूँ। नाम से रहित अचल स्वरुप हूँ ॥४०-४१

निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निस्पृहोऽस्म्यहम् ॥४२

निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥४३

मैं विकार से रहित नित्य शुद्ध गुण रहित स्पृहा से शून्य हूँ। इन्द्रिय से रहित सर्व का नियन्ता मैं हूँ कला से रहित निरपेक्ष स्वरूप मैं हूँ ॥४२-४३

पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ॥४४

पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥४५

मैं परमात्मा पुरुष हूं, मैं सबसे पुराना और उत्कृष्ट हूं।

पूर्णानन्द एवं बोध स्वरूप मैं हूं। प्रत्यक् स्वरूप होने पर भी एक रस मैं हूं ॥४४-४५

प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः ॥४६
एकधा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥४७

स्व स्वरूप से मैं प्रज्ञान हूं। मैं प्रकाश प्रशान्त स्वरूप परमेश्वर स्वरूप हूं। ब्रह्मज्ञानियों से मैं एक प्रकार का ही चिन्ता का विषय हूं। मैं द्वैताद्वैत से विलक्षण निर्विशेष स्वरूप हूं। क्योंकि द्वैत और अद्वैत दोनों सविशेष में ही होते हैं ॥४६-४७

शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तोऽस्मि
शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥४८
अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वेमहिम्नि सदा स्थितः ॥४९

निर्विकार होने से मैं शुद्ध हूं। स्वच्छ शान्त हूं। सदा वर्तमान हूं। शिव हूं। मैं सकृत् प्रकाश स्वरूप हूं। सदा अपनी महिमा में स्थित रहता हूं ॥४८-४९

सच्चिदानन्द मात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः ॥५०
मानावमानहीनोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥५१

मैं केवल सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ प्रकाश स्वरूप हूँ। ज्ञानघन हूँ। मान और अपमान से रहित हूं। निर्गुण स्वरूप हूँ। परम कल्याण स्वरूप हूँ ॥५०-५१

द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वन्द्वहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥५२

मैं द्वैत और अद्वैत से रहित हूँ। सुख दुःखादि द्वन्दों से रहित हूँ वह परमात्मा मैं हूँ ॥५२

भावाभावविहीनोऽस्मि भासाहीनोऽस्मि भास्यहम् ॥५३
शून्याशून्यविहीनोऽस्मि शोभनाशोभनोऽस्म्यहम् ॥५४

भाव और अभाव से रहित मैं हूँ। लक्षण से रहित मैं हूँ मैं प्रकाश स्वरूप हूँ शून्य और अशून्य से रहित मैं हूँ। मैं शोभन और अशोभन हूँ ॥५३-५४

सदसद्भेदहीनोऽस्मि सङ्कल्परहितोऽस्म्यहम् ॥५५
नानात्मभेदहीनोऽस्मि ह्यखण्डानन्दविग्रहः ॥५६

मैं सत्य और असत्य भेद से हीन हूँ। सङ्कल्प से रहित मैं हूँ। नाना आत्मा के भेद से रहित मैं अखण्ड आनन्द स्वरूप हूँ ॥५५-५६

बन्धमोक्षविहीनोऽस्मि शुद्धब्रह्मास्मि सोऽस्म्यहम् ॥५७

मैं बन्ध मोक्ष से रहित हूँ। शुद्ध ब्रह्म स्वरूप हूँ। और वह परमात्मा मैं हूँ ॥५७

चित्तादिसर्वहीनोऽस्मि परमोऽस्मि परात्परः ॥५८
सदा विचाररूपोऽस्मि निर्विचारोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥५९

मैं चित्तादि सर्व प्रपञ्चों से रहित हूँ। मनसे श्रेष्ठ हूँ। मैं क्षर और अक्षर से पर अक्षर स्वरूप हूँ। मैं सदा विचार रूप हूँ और निर्विचार स्वरूप भी मैं हो हूँ वह मैं हूँ ॥५८-५९

ध्यातृध्यानविहीनोऽस्मि ध्येयहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥६०
लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि लयहीनरसोऽस्म्यहम् ॥६१
मातृमानविहीनोऽस्मि मेयहीनः शिवोऽस्म्यहम् ॥६२

मैं ध्याता ध्यान और ध्येय रूप त्रिपुटी से रहित हूँ। वह ब्रह्म मैं हूँ। लक्ष्य और अलक्ष्य से रहित मैं हूँ। लय से रहित रस स्वरूप मैं हूँ। प्रमाता प्रमाण और प्रमेय से रहित शिव स्वरूप मैं हूँ ॥६०-६१-६२

सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृदप्यहम् ॥६३

मुदितामुदिताख्योऽस्मि सर्वमौनफलोऽस्म्यहम् ॥६४

समस्त इन्द्रियों से रहित मैं हूँ। और सर्व कर्मों का कर्ता भी मैं हूँ। प्रसन्नता और अप्रसन्नता नाम वाला मैं हूँ। सब मौन का फल मैं हूँ ॥६३-६४.

षड्विकारविहीनोऽस्मि षट्कोशरहितोऽस्म्यहम् ।६५

देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बरसुखोऽस्म्यहम् ।६६

उत्पत्ति सत्ता वृद्धि, परिणाम, क्षीणता, विनाशरूपी छ विकारों से रहित मैं हूँ। त्वचा, मांस, रुधिर स्नायु, मज्जा अस्थि रूप कोश से रहित मैं हूँ। देश काल से रहित दिगम्बर सुख मैं हूँ ॥६५-६६

अखण्डाकाशरूपोऽस्मि ह्यखण्डाकारमस्म्यहम् ॥६७

प्रपञ्चमुक्तचित्तोऽस्मि प्रपञ्चरहितोऽस्म्यहम् ।।६८

मैं अखण्ड आकाश रूप हूँ। और अखण्ड आकार भी मैं हूँ प्रपञ्च से मुक्त चित्त वाला मैं हूँ। अतएव प्रपञ्च से रहित मैं हूँ ॥६७-६८

सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् ॥६९

कालत्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ।७०

सूर्य आदि सर्व प्रकाश स्वरूप मैं हूँ चेतन रूप प्रकाश मैं हूँ। भूत भविष्य वर्तमान काल से रहित मैं हूं। सर्व अनर्थ के मूल काम क्रोधादि दोषों से रहित मैं हूं ॥६९-७०

मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा ॥७१
गन्तव्यदेशहीनोऽस्मि गमनादिविवर्जितः ॥७२

मुक्ति से रहित मैं हूं। क्योंकि बन्ध मुझ में नहीं है। अतएव सदा मैं मुक्त स्वरूप हूं। और अविद्या के अभाव से मोक्ष रहित मैं हूं। गन्तव्य (जाने योग्य) देश से रहित मैं हूं। क्योंकि सर्वत्र मैं व्यापक हूं। उपाधि से रहित होने के कारण गमन आदि क्रिया से भी मैं रहित हूं ॥७१-७२

सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि पुरुषोत्तमः ॥७३
चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः ॥७४

मैं सदा सम रूप हूं। शान्त हूं। और पुरुषोत्तम हूँ। चेतन अक्षर रूप मैं हूं। अजर अमर वासुदेव मैं हूँ ॥७३-७४

अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमद्वयम् ॥७५
परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम् ॥७६

अक्षर अद्वय वासुदेव नामक ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं परब्रह्म स्वरूप हूँ। परमानन्द स्वरूप मैं हूँ ॥७५-७६

केवल ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ॥७७
केवलं शांतरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥७८

मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं केवल परमात्मा स्वरूप हूँ। मैं केवल शान्त स्वरुप हूँ। मैं केवल चिन्मय स्वरुप हूँ ॥७८–७८

केवलं नित्यरूपो ऽहं केवलं शाश्वतो ऽस्म्यहम् ॥७९

केवलं सत्यरूपोऽहमहन्त्यक्त्वाऽहमस्म्यहम् ॥८०

मैं केवल सत्य स्वरूप हूँ। मैं सदा रहने वाला हूँ। अतएव मैं नित्य हूँ। अहं (मैं) भाव को त्याग कर केवल मैं ही शेष रहता हूँ ॥७९–८०

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः ॥८१

केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा ॥८२

मैं केवल तुर्यावस्था रूप हूँ। और तुर्यावस्था से परे भी मैं ही हूँ। निर्विशेष स्वरूप मैं ही हूँ। माया से रहित शुद्ध स्वरुप मैं हूँ ॥८१–८२

निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः ।८३

मैं निर्विकल्प स्वरूप हूँ। चेष्टा से रहित हूँ और सर्व उपद्रवों से रहित हूँ ॥८३

अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि ह्यनन्तानन्दरूपवान् ।८४

आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदा शिवः ॥८५

आदिमध्यान्तशून्योऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥८६

मैं अपरिमित रूप हूँ। और अनन्त आनन्द वाला हूँ। मैं आत्माराम स्वरूप सदा शिव हूँ। आदि मध्य और अन्त

से रहित मैं हूँ। अतएव आकाश के समान मेरा स्वरूप है ॥८४-८५-८६

नित्यशुद्धचिदानन्दः सत्तामात्रोऽहमव्ययः ॥८७
नित्यबुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ॥८८

मैं नित्य शुद्ध चिदानन्द अव्यय सत्तामात्र हूँ और नित्य शुद्ध विशुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ॥८७-८८

भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा ॥८९
सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ॥९०

मैं भूमा आनन्द स्वरूप हूँ। और सदा लक्षण से रहित हूँ। सब का अधिष्ठान स्वरूप हूँ। सर्वदा चिद्घन स्वरूप हूँ ॥८९-९०

चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥९१
अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि ॥९२

मैं चित्त वृत्ति से रहित हूँ। ज्ञानस्वरूप एकरस मैं हूँ। यदि सर्व दृश्य प्रपञ्च है तो सब मैं ब्रह्म स्वरूप ही हूँ। और चेतन स्वरूप हूँ ॥९१-९२

अहमेवाहमेवास्मि भूमाकारस्वरूपवान् ॥९३
अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः ॥९४

व्यापक आकार स्वरूप अहं शब्द वाच्य भूमा मैं ही हूँ। महान् आत्मा मैं ही हूँ। और सब से श्रेष्ठ मैं हूँ ॥९३-९४

अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवान् ॥९५
अहं शिष्यवदाभामि ह्ययं लोकत्रयाश्रयः ॥९६

मैं अन्य की तरह मालूम पड़ता हूँ और मैं ही शरीर वाला हूँ। मैं ही शिष्य की तरह पुनीत होता हूँ और मैं ही तीनों लोकों का आश्रय हूँ ॥९५-९६

अहं कालत्रयातीतो ह्यहं वेदैरुपासितः ॥९७

अहं शास्त्रेण निर्णीतो ह्यहं चित्ते व्यवस्थितः ।९८

मैं तीनों काल से परे हूं। मैं ही चारों वेदों से उपासित हूँ। मैं शास्त्रों से निर्णीत हूँ मैं ही चित्त में स्थित हूँ ॥९७-९८

आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥९९

आत्मन्यात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोह्यहमव्ययः ॥१००

मैं आनन्द घन ही हूँ। मैं केवल ब्रह्मस्वरूप हूँ। अपने आत्मस्वरूप में ही मैं तृप्त हूं। रूप से रहित मैं अव्यय हूं। अर्थात् कभी मुझ में घटना बढ़ना रूपविकार नहीं होता ॥९९-१००

आकाशादपि सूक्ष्मो ह्यमाद्यन्ताभाववानहम् ।१०१

सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ।।१०२

मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूँ। आदि और अन्त से रहित मैं हूँ। मैं सत्ता मात्र स्वरूप हूं। और शुद्ध मोक्ष स्वरूप मैं ही हूँ ॥१०१-१०२

सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम् ॥१०३

नामरूपविमुक्तो ह्यहमानन्दविग्रहः ।१०४

मैं सत्य और आनन्द स्वरूप हूँ। ज्ञान और आनन्दघन मैं हूँ। नाम और रूप से मुक्त मैं आनन्दस्वरूप हूँ ।।१०३-१०४

आदिचैतन्यमात्रो हमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥१०५
सर्वत्रपूर्णरूपो हं परमामृतरसोऽस्म्यहम् ॥१०६

मैं आदि चेतन स्वरूप हूँ। मैं अखण्ड एक रस हूँ। मैं सब जगह पूर्णरूप हूं। मैं परम अमृत रस स्वरूप हूँ ॥१०५–१०६

एकमेवाद्वितीय सद्ब्रह्म वाहं न संशयः ॥१०७
अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः ॥१०८

सजातीय विजातीय और स्वगत भेद से रहित मैं एक सत्य अद्वैत ब्रह्म ही हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं ही परब्रह्म हूँ। मैं ही गुरुओं का भी गुरु हूँ ॥१०७–१०८

सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ॥१०९
तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः । ११०

मैं समस्त व्यवहारिक ज्ञान का प्रकाशक हूँ और मुख्य विज्ञानस्वरूप हूं। मैं तुर्या अवस्था और उसके अभाव का प्रकाशक हूँ और उन दोनों भाव और अभाव से रहित हूँ ॥१०९–११०

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं
सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ॥१११
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं
तदेव चाहं सकलं विमुक्तः ॥११२

ज्ञानस्वरूप आकाश के समान सब से श्रेष्ठ माया और उसके कार्य से रहित सदा प्रकाशमान अज एक अक्षर निर्लेप सर्व

व्यापक जो अव्यय तत्व है वही सकल जगत् और ओंकार का अर्थ स्वरूप मैं हूँ ॥१११-११२

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोयं भेदबुद्धि विनाशयेत् ॥११३
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ॥११४

मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र जन्म और उसके हेतु पुण्य पाप को नाश करता है। मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र भेद बुद्धि को नाश करता है। ११३-११४

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोयं कोटिदोषं विनाशयेत् ॥११५
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रो य ज्ञानानन्दं प्रयच्छति ॥ ११६

मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र करोड़ों दोषों को नाश करता है। मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र ज्ञानरूपी आनन्द को देता है ११५-११६

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतन्मन्त्र समभ्यसेत् ११७
सद्यो मोक्षमवाप्नो ति नास्ति संदेहमण्वपि ॥११८

सब मन्त्रों का परित्याग करके इस मन्त्र का अभ्यास करे। उसी समय मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें अणु मात्र भी सन्देह नहीं है ॥११७-११८

इस प्रकार इस प्रकरण में अपने आत्मा के अनुभव के वचन हैं। जिस समय आत्मतत्व का पूर्ण साक्षात्कार हो जाता है। उस समय आत्मज्ञानी को उपरोक्त प्रकार का ही दृढ़ अनुभव होता है। वह केवल वाणीमात्र से ही कथन नहीं करता। जो लोग केवल वाणी से ही महावाक्यों को रटकर

कथन करते हैं। उनको वह सुख प्राप्त नहीं होता जो कि आत्म-साक्षात्कार से होता है। अतएव जो अधिकारी परिपूर्ण सुख को प्राप्त करना चाहते हैं। उनको चाहिये कि निज आत्मा का अनुभव करें। व्यर्थ की बातों में समय को नष्ट न करें। क्योंकि उनसे कोई विशेष फल नहीं होता है। जैसे कोई औषधि की प्रशंसा को सुन कर उसका कथन तो करे और औषधि का सेवन न करे तो उसका रोग शान्त कैसे होगा। अर्थात् कभी नहीं होगा। अतएव इन वाक्यों को अपने मन में धारण करके इनके अर्थ का अनुसन्धान सदा करना चाहिये। अब अगले प्रकरण में समाधि के प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं क्योंकि समाधि में ही आत्मतत्त्व का यथार्थ अनुभव होता है।

॥ इति नवमप्रकरणम् ॥

अथ समाधिवाक्यानि

अब समाधि के स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं—

जीवात्मपरमात्मैक्यावस्थात्रिपुटीरहिता परमानन्दस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका समाधिः ॥१

जीवात्मा और परमात्मा की, भेद से शून्य एक रूप से स्थिति ध्याता ध्यान ध्येयादि त्रिपुटी से रहित परमानन्द स्वरूप निर्विकल्प बुद्धि वृत्ति में आरूढ़ शुद्धचैतन्य ही निर्विकल्प समाधि है॥१

ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवत् ध्येयैक गोचरं चित्त समाधिः ॥२

ध्याता और ध्यान के सम्बन्ध को त्याग कर वायु से रहित स्थान में स्थित दीपक के समान केवल ध्येय के आकार को प्राप्त चित्त को समाधि कहते हैं ॥२

मनः प्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति ॥३

काम आदि वृत्तियों से शून्य मन परमात्म भाव को प्राप्त होता है ॥३

प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये परमात्मानि हृदि संस्थिते देहे लब्धशान्तिपदं गते तदा प्रभा मनोबुद्धिशून्यं भवति ॥४

शास्त्र जन्य ज्ञान से आत्म अनुभव जन्य विज्ञान के प्राप्त होने पर अपने हृदय में ज्ञेय परमात्मा के स्थित होने पर देह के अभिमान दूर होने पर उसी समय मन बुद्धि से कल्पित जाग्रत आदि अवस्था से शून्य होता है। इसी का नाम समाधि है ॥४

प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृतकुम्भको नासाग्रदर्शन-दृढभावनया द्विकरांगुलिभिः षण्मुखीकरणेन प्रणवध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं भवति ॥५

दोनों हाथ की अंगुलियों से षट् (छ) मुखी करने से और नासिका के अग्रभाग के दर्शन की दृढ़ भावना से ऊपर और नीचे को गमन करने वाले प्राण और अपान की एकता

कर के कुम्भक प्राणायाम को धारण करता हुआ दीर्घ घण्टा के समान हृदय में अनाहत नामक प्रणव की ध्वनि सुन कर मन उसमें लय हो जाता है। उस मन के लय होने की अवस्था का नाम समाधि है। पण्मुखी करने की विधि गुरु के द्वारा जानना चाहिए ॥५

पयः स्त्रवानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशं भवति ॥६

गऊ के बछड़े के संयोग से गऊ के स्तन के दूध के निकल जाने के बाद, उस स्तन के दूध के समान सर्व इन्द्रियों के व्यापार के नाश होने पर मन का नाश होता है उस मनोनाश का ही नाम समाधि है ॥६

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥७

बुद्धिश्च न विचेष्टन्ती तामाहुः परमाङ्गतिम् ॥८

जिस अवस्था में पांच ज्ञान इन्द्रिय मन के सहित अपने व्यापार से रहित होती हैं। और बुद्धि स्थिर हो जाती है उसी को समाधि कहते हैं ॥७–८

संशान्तसर्वसङ्कल्पा या शिलावदवस्थितिः ॥९

जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥१०

सर्व सङ्कल्पों की निवृत्ति होने पर जो शिला के समान स्थिति है। वही जाग्रत और निद्रा से रहित सब से श्रेष्ठ स्वरूप की स्थिति है ॥९–१०

मारुते मध्यसञ्चारे मनःस्थैर्यं प्रजायते ॥११
यो मनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥१२

प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में सहस्रार चक्र पर्यन्त वायु के व्याप्त होने पर वहाँ पर स्थित चिदाकाश में मन स्थिर होता है। जो मन का सुस्थिरी भाव है वही निर्विकल्प समाधि है ॥११-१२

सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥१३
निद्राद्यारूपनाशस्तु वर्ततेऽदेहमुक्तिके ॥१४

जीवन्मुक्त मुनि का यह मनोनाश सरूप है। क्योंकि उत्थान दशा में पुनः प्रगट होता है। निद्रा आदि वृत्ति अरूप नाश है यह विदेह मुक्ति अवस्था में होता है। क्योंकि उससे पुनः उत्थान नहीं होता ॥१३-१४

चित्त्ये चैत्यदशा हीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् ॥१५
सोच्यते शान्तकलना जाग्रत्येव सुषुप्तता ॥१६

योगियों के अन्तःकरण में दृश्य से अभाव होने पर जो स्थिति होती है। वही जाग्रत् में सुषुप्तता निर्विकल्प समाधि कही जाती है ॥१५-१६

नैतज्जाग्रन्न च स्वप्नः सङ्कल्पानामभावनात् ॥१७
सुषुप्तभावो नाप्येतदभावाज्जडतास्थितेः ॥१८

यह निर्विकल्प अवस्था रूप जाग्रत नहीं है क्योंकि वाणी मन आदि चतुर्दश (चौदह) करणों का व्यापार उस समय

नहीं होता। और स्वप्न रूप भी नहीं है क्योंकि स्वान्तःकरण गोचर सङ्कल्प आदि वृत्तियों का अभाव रहता है। यह सुषुप्ति भी नहीं है। क्योंकि सुषुप्ति के समान जड़ता की स्थिति नहीं रहती ॥१७–१८

सत्त्वावबोध एवासौ वासनातृणपावकः ॥१९

प्रोक्तः समाधिशब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः ॥२०

यह ब्रह्म ही है ऐसी निश्चयात्मिका बुद्धि वासना रूपी तृण को भस्म करने वाली होती है। वही समाधि शब्द से कही जाती है। केवल तूष्णी (चुप) स्थिति को समाधि नहीं कहते हैं ॥१९–२०

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ॥२१

वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥२२

जाग्रत् आदि अवस्था में निर्विकार रूप से पुनः ब्रह्माकार रूप वृत्ति से युक्त योगी की सकल वृत्तियों का विस्मरण ही समाधि कही जाती है ॥२१–२२

दृश्यासम्भवबोधेन रागद्वेषादितानवे ॥२३

रतिर्बलोदिता यासौ समाधिरभिधीयते ॥२४

जो दृश्य है वह असत्य है इस ज्ञान से राग द्वेष आदि के क्षीण होने पर बल से उत्पन्न भई जो ब्रह्मभाव में प्रीति वह समाधि कही जाती है ॥२३–२४

अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितः ॥२५

समाधिः स तु विज्ञेयाः सर्ववृत्तिनिरोधकः ॥२६

मैं ही परब्रह्म हूँ वही सर्व का अवभासक प्रत्यग् रूप मैं हूँ। इस प्रकार की सम्यक् स्थिति ही सब वृत्तियों का निरोधक है और इसी को समाधि समझना चाहिये ॥२५-२६

समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति ॥२७

ध्यानस्यविस्मृतः सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥२८

जीव और परमात्मा की एकता के प्रति उत्पन्न हुआ जो ज्ञान वह समाधि है और सम्यक् ध्यान की विस्मृति होना ही समाधि कही जाती है ॥२७-२८

समाहिता नित्यतृप्ता यथा भूतार्थदर्शिनी ॥२९

ब्रह्मन् समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः ॥३०

हे ब्रह्मन्, ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं है इस ज्ञान से समाहित ब्रह्ममात्र में नित्य तृप्त वास्तविक वस्तु को जानने वाली सर्वश्रेष्ठ बुद्धि को ही बुद्धिमान लोग समाधि शब्द से कहते हैं ॥२९-३०

अक्षुब्धा निरहङ्कारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी ॥३१

ब्रह्मन् समाधिशब्देन मेरोःस्थिरतरास्थितिः ॥३२

हे ब्रह्मन् काम आदि वृत्तियों से विक्षेप रहित, देह आदि में अहंभाव (मैं पन) से शून्य, राग द्वेष आदि द्वन्द्वों में स्फुरना

से रहित, सुमेरु पर्वत से भी अधिक अचञ्चल मनकी स्थिति को समाधि शब्द से कथन करते हैं ॥३१-३२

निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता ॥३३
ब्रह्मन् समाधिशब्देन परिपूर्णमनोगतिः ॥३४

हे ब्रह्मन् ब्रह्म ही मैं हूँ इससे निश्चित इच्छा से रहित हेय और उपादेय से रहित परिपूर्ण मन की गति समाधि शब्द से कही जाती है ॥३३-३४

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः ॥३५
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीते । ३६

जैसे जल के योग से नमक जलरूप हो जाता है तैसे ही आत्मा और मन की एकता को समाधि कहते हैं ॥३५-३६

यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः ॥३७
समस्तनष्टसङ्कल्पः समाधिरभिधीयते ॥३८

इस संसार में जो जीव और ईश्वर की एकता है वही समस्त संकल्प से रहित समाधि कही जाती है ॥३७-३८

प्रमाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम् ॥३९
सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते ॥४०

मन बुद्धि और इनसे कल्पित समस्त संसार से शून्य सर्व उपद्रवों से रहित मैं ब्रह्म हूँ यह ज्ञान ही समाधि है ३९-४०

ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना ॥४१
स प्रज्ञातसमाधिः स्यात् ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥४२

देह आदि में अहंभाव के बिना ध्यान के अभ्यास की अधिकता से उत्पन्न हुआ जो ब्रह्माकार मन की वृत्ति का प्रवाह वही संप्रज्ञात नामक समाधि है ॥४१-४२

प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददीपकम् ॥४३
असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः ॥४४

समस्त वृत्तियों से रहित परम आनन्द का बोधक यह चित्त ही योगियों को अति प्रिय असंप्रज्ञात नामक समाधि है ॥४३-४४

स्वानुभूतिरसावेशाद् दृश्यशब्दानुपेक्षितुः ॥४५
निर्विकल्पसमाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् ॥४६

अपने आत्म तत्व के अनुभव के रसवश समस्त दृश्य शब्दों की उपेक्षा करने वाले की वायु से रहित स्थान में स्थित दीपक के समान निश्चल मन की स्थिति निर्विकल्प समाधि है ॥४५-४६

प्रमाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् ॥४७
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः ॥४८

प्रमा मन बुद्धि शब्द से वाच्य अवस्था त्रय से शून्य ज्ञान स्वरूप जो ब्रह्म है उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है यह निर्विकल्प समाधि मुनियों से निश्चित है ॥४७-४८

ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ॥४९
साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः पारमार्थिकः ॥५०

ऊपर पूर्ण है नीचे पूर्ण है मध्य में पूर्ण है और वह पूर्णता

हो शिव स्वरूप है। यह साक्षात त्रिविमुख पारमार्थिक समाधि है ॥४६–५०

इस प्रकार इस प्रकरण में समाधि के वास्तविक स्वरूप को अनेकों वाक्यों के द्वारा प्रतिपादन किया है। जिससे अधिकारी पुरुषों को भ्रम न हो जाय। क्योंकि बिना लक्षण के परिज्ञान हुये भ्रम होना अवश्य निश्चित है।

अतएव समाधि के स्वरूप में भ्रम न हो जाय। इसलिये इन वचनों का सदा मनन करके धारण करना चाहिये।

अब अगले प्रकरण में आत्मा के स्वरूप को प्रगट करने के लिये नाना लिङ्गरूप वाक्यों को कहेंगे।

॥ इति दशमप्रकरणम् ॥

अथाष्टविधिस्वरूपवाक्यै नानालिङ्ग स्वरूपवाक्यानि

शास्त्रों में जो आत्मरूप से अभिमत है उसके प्रकट करने के लिये अष्टविध स्वरूप महावाक्यों में अब नाना लिङ्ग स्वरूप वाक्यों का कथन करते हैं।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ॥१

जो श्रोत्र का भी श्रोत्र है। मन का भी मन है। वाणी का भी वाणी है वही प्राण का प्राण सर्व का प्रकाशक आत्मा है ॥१

यो वै भूमा तत्सुखम् ॥२

यो वै भूमा तदमृतम् ॥३

जो व्यापक आत्मा का स्वरूप है वही सुख है। जो परिच्छेद से रहित स्वरूप है वही अमृत है ॥२-३

नेति नेति नह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेय थं सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेव सत्यम् ॥४

उस आत्मा से अतिरिक्त कोइ वस्तु नहीं है, नहीं है, नहीं है। उससे अतिरिक्त सब नाम मात्र ही हैं उसके विश्रान्ति का स्थान सत्य का सत्य है प्राण ही सत्य है उस प्राण का सत्य परमात्मा है ॥४

रातिर्दातुः पारायणम् ॥५

सकल प्रपञ्च रूपधन के त्याग कर्ता का आत्मा उत्तम स्थान है। अर्थात देह के अन्त में उसकी मुक्ति अवश्य होती है क्योंकि त्याग से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है ॥५

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम ॥६

वह परमात्मा सब ओर व्यापक है। उसका स्वरूप शुक्र, शरीर से रहित व्रण से रहित सूक्ष्म नाडियों से रहित देह के कारण पुण्य पाप से रहित शुद्ध है ॥६

प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः ॥७

प्रणव ही अपरं (कार्य कारण) ब्रह्म है और वही पर (कार्य कारण से शून्य) कहा जाता है ॥७

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ॥८
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥९

जिसका न तो उत्पत्ति है न नाश है जो न बद्ध है न साधक है न मुक्ति की इच्छा करता है न मुक्त है। इस प्रकार यह परमार्थता है ॥८-९

अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसात्रयी ॥१०
अखण्डैकरसो देहो अखण्डैकरसं मनः ॥११
अखण्डैकरसं सूत्रमखण्डैकरसो विराड् ॥१२
अखण्डैकरसाविद्या अखण्डैकरसाव्ययः ॥१३
अखण्डैकरसं गोप्यमखण्डैकरसः शशी ॥१४
अखण्डैकरसं क्षेत्रमखण्डैकरसा क्षमा ॥१५
अखण्डैकरसास्तारा, अखण्डैकरसो रविः ॥ १६
अखण्डैकरसो ज्ञाता, अखण्डैकरसो स्थितिः ॥ १७
अखण्डैकरसा माता, अखण्डैकरसः पिता ॥ १८
अखण्डैकरसो राजा, अखण्डैकरसं पुरम् ॥ १९
अखण्डैकरसं तारमखण्डैकरसो जपः ॥ २०

ब्रह्म अखण्ड एक रस स्वरूप है। उससे अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। अतएव शास्त्र से लेकर जप तक बाध समानाधिकरण न्याय से अखण्ड एक रस ही सिद्ध किया गया है। शास्त्र वेद, देह, मन हिरण्यगर्भ, विराट् अविद्या, अव्यय, गोप्य, चन्द्रमा, क्षेत्र, भूमि, तारा, सूर्य, ज्ञाता, स्थिति, माता, पिता, राजा, पुर

प्रणव और उसका जप, यह सभी अखण्ड एक रस ब्रह्म स्वरूप हैं ॥१०, ११ १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०

सर्वं जगच्चिन्मात्रं त्वन्मत्ता च चिन्मयम् ॥२१
आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादिचिन्मयम् ॥२२
दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥२३
सर्वाश्चर्यं च चिन्मात्रं देहश्चिन्मात्रमेव हि ॥२४
अहं त्वञ्चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादिचिन्मयम् ॥२५
पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥२६

सब से रहित चिन्मात्र (चेतन स्वरूप) ब्रह्म ही है अतएव त्वत्ता (तुम पना) मत्ता (मैं पना) आदि अन्त गुरु शिष्य, द्रष्टा दृश्य, सर्व आश्चर्य, देह, मैं और तुम, मूर्त और अमूर्त, पुण्य पाप और जीव यह सब चेतन स्वरूप ब्रह्म ही है ॥२१-२२ २३-२४-२५-२६

देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ॥२७
जीवत्रयगुणाभावात् तापत्रयविवर्जनात् २८
लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ॥२९
चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च ॥३०
पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥३१
मृत्युर्नास्ति जनाभावाद् बुद्ध्यभावात्सुखादिकम् ॥३२

तीन देह से रहित होने से और तीनों काल से वर्जित होने से विश्व तैजस प्राज्ञ और सत्व रज तम गुणों के अभाव होने

से स्वर्ग, मनुष्य और पाताल लोक से रहित होने से आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधि दैविक दुःखों से शून्य होने से आत्मा यह है इस उपदेश से, चित्त के अभाव होने से चिन्तन करने योग्य और देह के अभाव होने से वृद्धा अवस्था नहीं, पाद के अभाव होने से गति (जाना आना) नहीं, हस्त के अभाव से क्रिया नहीं। जन्म के अभाव से मृत्यु नहीं, बुद्धि के अभाव से सुख दुःखादि नहीं है ॥२-२८ २९-३०-३१-३२

इस प्रकार नाना लिङ्ग स्वरूप वाक्यों से ब्रह्म का प्रतिपादन किया अब अगले प्रकरण में पुलिङ्ग स्वरूप वाक्यों से ब्रह्म का प्रतिपादन करेंगे।

॥ इति एकादशप्रकरणम् ॥

अथ पुलिङ्गस्वरूपवाक्यानि

अब पुलिङ्ग स्वरूप वाक्यों का उल्लेख करते हैं।

स एषोऽकलोऽमृतः ॥१

जो यह आत्मा है वही कला से रहित अमृतरूप है ॥१

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्य मव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शांतं शिवमद्वैत चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥२

न अन्तः—प्रज्ञ है न बहिः प्रज्ञ है न अन्तःबहिः उभय प्रज्ञ है न प्रज्ञ है न प्रज्ञ से रहित अप्रज्ञ है। किन्तु अवयव से रहित होने से अदृश्य है। व्यवहार का विषय नहीं होने से अव्यवहार्य है। रूप से रहित होने से अग्राह्य है वाणी मन के अगोचर होने के अलक्षण है। चिन्तन करने के अयोग्य है। एक अद्वैत स्वरूप का ज्ञान ही सार है जिसका, वह प्रपञ्च से रहित शान्त शिवस्वरूप अद्वैत है जिसको तुरीय मानते हैं। वह आत्मा है वही जानने योग्य है ॥२

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैतः ॥३

विषयों से भिन्न तुरीय व्यवहार के अयोग्य प्रपञ्च से रहित शिव अद्वैत स्वरूप आत्म तत्त्व है ॥३

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा ॥४

जिस अपने स्वरूप में ब्रह्मज्ञानी अपने से अतिरिक्त कुछ भी रूप नहीं देखता, शब्द नहीं सुनता, सत्य असत्य वस्तु नहीं जानता वह भूमा (व्यापक) परमात्मा है ॥४

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसङ्गो नहि सज्जतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति ॥५

जो परमात्मा "नेति नेति" (यह नहीं यह नहीं) इन निषेध वचनों के द्वारा समस्त प्रपञ्च के निषेध करने पर शेष रहता है। वह सर्व निषेधों का आधार परमात्मा कर्मेन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता। अतएव ग्रहण करने योग्य नहीं होने से अग्राह्य है।

जो जीर्ण नहीं होता वह शीर्य है। शरीर से रहित होने पर किसी से भिन्न नहीं होता है। अतएव असङ्ग है। अमूर्त होने से किसी से बन्धता नहीं। अतएव पीड़ा को नहीं प्राप्त होता है और नाश भी उसका नहीं होता है ॥५

रसघन एवैव पाऽरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः

कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ॥६

और मैत्रेयि यह आत्मा रस घन ही है। आनन्द घन ही है। इसी तरह अनन्तर है, अबाह्य है। अर्थात् अन्तर और बाह्य विभाग से शून्य है। अतएव सम्पूर्ण प्रज्ञान घन ही है। भावार्थ यह है कि सच्चिदानन्द घन परब्रह्म से अतिरिक्त और कोई भी तत्त्व नहीं है। ६

तस्मान्मनो विलीने मनसि गते सङ्कल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः ओं शक्त्यात्मकः सर्वत्रावस्थितः स्वयं ज्योतिः शुद्धो नित्यो निरञ्जनः शान्ततमः प्रकाशयति ॥७

उस समाधि से मन के विलीन होने पर और मन की वृत्ति सङ्कल्प और विकल्प मन में प्राप्त होने पर और पुण्य पाप के दग्ध हो जाने पर सदा शिव प्रणव शक्ति स्वरूप सर्वत्र स्थित स्वयं प्रकाश स्वरूप से स्थित हुआ शुद्ध नित्य निरञ्जन अतिशय शान्त रूप से प्रकाशित होता है ॥७

एष शुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणोऽनीशात्मानन्तो ध्रुवस्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः स्वेमहिम्नि तिष्ठति ॥८

यह परमात्मा स्वभाव से शुद्ध पवित्र अन्तःकरण से शून्य शान्त प्राण से रहित अनीश्वर स्वरूप अनन्त क्षय से रहित स्थिर चिरन्तन अज स्वतन्त्र रूप से अपनी महिमा में निर्विशेष रूप में स्थित होता है ॥८

चक्षुषो द्रष्टा श्रोत्रस्यद्रष्टा मनसोद्रष्टा वाचोद्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टा प्राणस्यद्रष्टातमसोद्रष्टासर्वस्यद्रष्टाततसर्वस्मादन्योविलक्षणः सद्घनोऽयं चिद्घन आनन्दघन एवैक रसोऽव्यवहार्यः ॥९

चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी, बुद्धि, प्राण, तम (अज्ञान) का भी द्रष्टा होने से यह आत्मा सर्व का साक्षी है। यह सर्व से विलक्षण सद्घन चिद्घन आनन्द घन ही एक रस व्यवहार के अयोग्य है ॥९

सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वयानन्दः परः प्रत्यगेकरसः । १०

केवल सत्ता रूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सत्य, मुक्त, निरञ्जन (अज्ञान से रहित) व्यापक अद्वितीय आनन्द स्वरूप परमात्मा प्रत्यक् स्वरूप जीव से अभिन्न है ॥१०

अदृष्टोऽव्यवहार्योऽप्यल्पोऽनल्पः साक्ष्यविशेषः सर्वज्ञोऽनन्तोऽभिन्नोऽद्वयो विदिताऽविदितात्परः ॥११

वह परमात्मा अदृष्ट है, व्यवहार के योग्य नहीं है और अल्प भी है, अल्प नहीं भी है। साक्षी वस्तुतः निर्विशेष सर्वज्ञ, अनन्त, अभिन्न, अद्वय विदित और अविदित से परे है ॥११

अद्वैत परमानन्दो विभुर्नित्यो निष्कलङ्को निर्विकल्पो

निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयो ऽस्ति कश्चित् ॥१२

अद्वैत परमानन्द व्यापक माया रूप कलङ्क से रहित. निर्विकल्प निरञ्जन अपने से अतिरिक्त नाम से रहित शुद्ध देव एक नारायण है दूसरा कोई नहीं ॥१२

अचक्षुर्विश्वतश्चक्षुरकर्णोविश्वतः कर्णो अपादोविश्वतः पाद आपाणिर्विश्वतः पाणिरहमशिरा विश्वतः शिरा विद्या मात्रैकसंश्रयो विद्यारूपः ॥१३

मैं परमात्मा निर्विशेष रूप से चक्षु, कर्ण, पाद, पाणि, शिर आदि से रहित हूँ। सविशेष विराड् रूप से चक्षु आदि सकल करण रूपों अवयव वाला हूँ। वस्तुतः विद्यामात्र का एक आश्रय विद्या रूप हूँ ॥१३

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । १४
अप्राणो ह्यमनः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ १५

अपनी महिमा में स्थित है अतएव दिव्य है। मूर्ति से रहित होने से अमूर्त है। सर्वत्र पूर्ण होने से पुरुष है। प्रपञ्च में बाह्य और आभ्यन्तर के सहित है, उत्पन्न न होने से अज है प्राण और मन से रहित प्रकाश स्वरूप अक्षर से परे ईश्वर और उससे परे साक्षी, उस साक्षी से परे ब्रह्म है ॥१४-१५

अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः ॥ १६

विश्व विराड् ईश्वर आदि भावों का द्वैत की तरह भाव होने

पर भी उनके अपवाद का आधार देव तुर्य विभु अद्वैत स्वरूप है ॥१६

अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः ॥ १७
अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ॥ १८

स्वतः अन्य कारण के अभाव होने से अपूर्व है तथा कार्य के अभाव होने से अनन्तर है। अपने से बाह्यत्व के अभाव होने से अबाह्य है और अपने से पर के अभाव होने से अनपर है। नित्य होने से अव्यय परमात्मा ही शेष रहता है। मात्रा से रहित अनन्त मात्रा वाला प्रणव द्वैत से रहित शिव रूप है ॥१७–१८

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता
केवलो निर्गुणश्च ॥ १९

कर्मों के फल का दाता सब भूतों का आश्रय साक्षी चेतन केवल निर्गुण परमात्मा का स्वरूप है ॥१९

सर्वसंकल्परहितः सर्वज्ञानमयः शिवः ॥२०
सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ॥२१

सर्व सङ्कल्प से शून्य सर्वज्ञानमय शिव ही है। सब से रहित चेतनस्वरूप सर्व आनन्दमय परमात्मा है ॥२०–२१

सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥२२
आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः ॥२३
महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ॥२४

तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः ॥२५

समस्त सङ्कल्पों से रहित आत्म मन्त्र प्रणव आदि नाद से प्रचुर वस्तुतः शिव ही है। सर्व जड़ से रहित केवल चेतन स्वरूप सर्व आनन्द मय परमात्मा है। सब अनुभव से रहित और सब ध्यान से शून्य पर तत्व है। आत्मा अनात्मा का विवेक आदि भेद और अभेद आदि से रहित महावाक्य के अर्थ से दूर मैं ब्रह्म हूं इसमें अति दूर तत शब्द और त्वं शब्द से रहित और तत्त्वमसि आदि वाक्य के अर्थ से रहित निर्विशेष परमात्मा है ॥२२—२३—२४—२५

क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः ॥२६

क्षर और अक्षर से रहित जो है वही नाद के अन्दर प्रकाशमान ज्योति स्वरूप पर ब्रह्म है ॥२६

अखण्डैकरसो वाहमानन्दोऽस्मीति वर्जितः ॥२७

दृश्यदर्शननिर्मुक्तः केवलामलरूपवान् ॥२८

मैं अखण्ड एक रस हूं। आनन्द स्वरूप हूं। इत्यादि वृत्तियों से रहित हूं। क्योंकि ए वृत्तियां मायिक हैं ॥२७-२८

नित्योदितो निराभासो द्रष्टा साक्षी चिदात्मकः ॥२९

स एव विदितादन्यस्तथैवाविदितादपि ॥३०

जो परमात्मा सत्य रुप से नित्य प्रगट है। उदय और अस्त स्वरुप आभास के अभाव होने से निराभास है। जीव रुप से व्यष्टि प्रपञ्च का द्रष्टा और ईश्वर रुप से समष्टि प्रपञ्च का

साक्षी वस्तुतः चेतन स्वरूप है वही स्थूल और सूक्ष्म से भी अन्य है ॥२६–३०॥

इस प्रकार पुंलिङ्ग स्वरूप वाक्यों का वर्णन किया जिससे परमात्मा पुंलिङ्ग रूप है यह निश्चित होता है। अब अगले प्रकरण में स्त्रीलिंग स्वरूप वाक्यों के द्वारा परमात्मा का प्रतिपादन करेंगे।

॥ इति द्वादशप्रकरणम् ॥

अथ स्त्रीलिंगस्वरूपमहावाक्यानि।

अब स्त्रीलिंग स्वरूप महावाक्यों का वर्णन करते हैं—

अलौकिकपरमानन्दलक्षणाऽखण्डामिततेजोराशिः ॥१

अलौकिक परम आनन्द स्वरूपा अखण्ड अमित तेजोराशि रूपिणी चिति है ॥१

भावाऽभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्या अद्वितीयब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति ॥२

भाव और अभाव रूप कला से रहित चित् विद्या अद्वितीय ब्रह्म ज्ञान स्वरूपिणी सच्चिदानन्द लहरी महा त्रिपुरसुन्दरी देवी बाहर भीतर प्रविष्ट होकर स्वयं एक स्वरूप से ही प्रकाशित होती है ॥२

सर्वसङ्कल्परहिता सर्वसंज्ञाविवर्जिता ॥
सैषा चिदविनाशात्मा स्वात्मेत्यादिकृताभिधा ॥४

समस्त सङ्कल्प से रहित सर्वनाम से रहित जो चिति है वह यह चित् अविनाशात्मा स्वात्मा इत्यादि नाम वाली कही गई है ॥३-४

आकाशशतभागाच्छा ज्ञेषु निष्कलरूपिणी ॥५

आकाश से भी अत्यन्त निरवयव विद्वानों में निष्कलरूपिणी चिति शक्ति है ॥५

नास्तमेति न चोदेति नोत्तिष्ठति न तिष्ठति ॥६
न च याति न चायाति न च नेह न चेहचित् ॥७

वह चेतन शक्ति न तो अस्त होती है न उदय होती है न उठती है न बैठती है। न आती है न जाती है। न तो यहां नहीं है न यहां है। इन सर्वभावों से रहित वह शुद्ध है ॥६-७

सैषा चिदमलाकारा निर्विकल्पा निरास्पदा ॥८

वह चिति शक्ति निर्मल निर्विकल्प निराश्रय रूप है ॥८

महाचिदेकैवेहास्ति महासत्तेति योच्यते ॥९
निष्कलङ्का समा शुद्धा निरहङ्काररूपिणी ॥१०
सकृद्विभाता विमला नित्योदयवती समा ११
सा ब्रह्म परमात्मेति नामभिः परिगीयते ॥१२

वह महाचिद् एक ही यहाँ है उसी को महासत्ता है कहते हैं जो कलङ्क से रहित सम शुद्ध अहङ्कार से शून्य रूप वाली सदा

प्रकाशवती निर्मल नित्य उदय वती समरूपिणी चित है वहब्रह्म परमात्मा इत्यादि नामों से कही जाती है ॥९-१०-११-१२

इस प्रकार स्त्रीलिंग स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन किया अब अगले प्रकरण में नपुंसक लिंग स्वरूप वाक्यों का कथन करेंगे।

॥ इति त्रयोदशप्रकरणम् ॥

अथ नपुंसकलिङ्गस्वरूपवाक्यानि ।

अथ नपुंसकलिंग स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते है।

अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ॥१

वह ब्रह्म विदित और अविदित से अन्य ही है ॥१

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रतदपाणिपादम् ॥२

जो वह अदृश्य अग्राह्य अगोत्र अवर्ण अश्रोत्र है वह पाणि पाद से भी रहित है ॥२

सतेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥३

हे प्रिय दर्शन यह प्रथम सत ही सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित था ॥३

अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणमसुखममात्रमनन्तरमवाह्यम् ॥४

वह आत्मा स्थूल नही, अणु नहीं, ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं, लोहित नहीं, स्नेह नहीं, छाया से रहित, तम से रहित, वायु और आकाश से रहित, असङ्ग, रस नहीं, गन्ध नहीं चक्षु नहीं

श्रोत्र नहीं, वाणी मन नहीं, तेज नहीं, प्राण नहीं, मुख नहीं, मात्रा नहीं बाह्य और अभ्यन्तर से भी शून्य है ॥४

नित्यं शुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानन्दचिन्मात्रं पुरतः सुविभातमविभातमद्वैतमचिन्त्यमलिङ्ग स्वप्रकाशमानन्दघनम् ॥५

वह परमात्मा नित्य शुद्ध मुक्त सत्य सूक्ष्म परिपूर्ण अद्वितीय सदा आनन्द चिन्मात्रस्वरूप सुख से प्रकाशित किसी भी सूर्यादि ज्योतियों से नहीं प्रकाशित अद्वैत अचिन्त्य अलिङ्ग स्वप्रकाश आनन्दघन स्वरूप है ॥५

एतद्ब्रह्मशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धमवक्तव्यमदातव्यमगन्तव्यमविसर्जयितव्यमनानन्दयितव्यममन्तव्यमबोद्धव्यमनहङ्कर्तव्यमचेतयितव्यमप्राणयितव्यमपानयितव्यमव्यानयितव्यमनुदानयितव्यमसमानयितव्यमनिन्द्रियमविषयकरणमलक्षणमलक्षणमपङ्गमगुणमविक्रियमव्यपदेश्यमसत्त्वमरजस्कमतमस्कममायमभयमप्योपनिषदमेव सुविभातं सकृद्विभातं पुरतोऽस्मात्सुविभातमद्वयम् ॥६

यह ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वक्तव्य, गन्तव्य, दातव्य विसर्जयितव्य, आनन्दयितव्य, मन्तव्य, बोद्धव्य अहंकर्तव्य, चेतयितव्य, प्राणयितव्य, अपानयितव्य, व्यानयितव्य, उदानयितव्य, समानयितव्य, इन्द्रिय विषय करण, लक्षण, सङ्ग, गुण, विक्रिया, व्यपदेश्य, सत्त्व, रज, तम, माया, भय से रहित

हुआ भी उपनिषद् से ही जाना जाता है। अतएव सुवकाश सदा प्रकाश स्वरूप होने से इन विषयों के ज्ञान से पूर्व ही अद्वैत स्वरूप से प्रकाशित होता है ॥६

अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं निरतिशयानन्द-लक्षणं परमाकाशम् ॥७

वह ब्रह्म अनिर्वचनीय प्रकाश सर्वव्यापक निरतिशय आनन्द परम आकाश स्व प है ॥७

तद्ब्रह्मतापत्रयातीतं षट्कोशविनिर्मुक्तं षडूर्मिवर्जितं पञ्चकोशातीतं षड्भावविकारशून्यमेवमादिसर्वविलक्षणम् ॥८

वह ब्रह्म तीन तापो से रहित षट्कोश से रहित (त्वक्, रुधिर, मांस, मेद, मज्जा, अस्थी षट्कोश हैं) भूख, पियास, शोक मोह, जरा मरण षड् उर्मियों से रहित। अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमयरूप पञ्चकोशों से रहित, उत्पत्ति, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, क्षीणता, नाश रूप षड् विकारों से शून्य सर्व विलक्षण है ॥८

निर्गुणं निरुपप्लवं ज्योतिराभ्यन्तरं सर्वमायातीतमप्रत्यगेकरसमद्वितीयम् ॥९

वह ब्रह्म निर्गुण उपद्रव से रहित अन्तः ज्योतिस्वरूप सर्व माया से रहित जीव से भिन्न एक रस अद्वैत स्वरूप है ॥९

तज्ज्योतिरेकमद्वितीयं सर्वकल्पनातीतं ध्रुवमक्षरमेकं सदा चकास्ति सच्चिदानन्दम् ॥१०

वह ब्रह्म ज्योति एक अद्वैत सर्व कल्पना से परे अचल नाश से रहित एक सच्चिदानन्दस्वरुप सदा प्रकाशित होता है ॥१०

यत्तत्सत्यं विज्ञानमानन्दं निष्क्रियं निरंजनं सर्वगतं सुसूक्ष्मं सर्वतोमुखमनिर्देश्यममृतं निष्कलम् ॥११

वह ब्रह्म सत्य विज्ञान आनन्द क्रिया से रहित माया से रहित सर्वव्यापक सर्वत्र मुख वाला अनिर्देश्य निष्कल अमृत स्वरुप है ॥११

एकमद्वैतं निष्कलं निष्कलं शान्तं निरतिशयमनामयमद्वैतं चतुर्थं ब्रह्म विष्णुरुद्रातीतमेकमाशास्यम् ॥१२

एक अद्वैत निरवयव क्रिया रहित शान्त निरतिशय निरुपद्रव अद्वैत तुरीय ब्रह्म, रुद्रादिकों से परे ब्रह्म आशा करने योग्य है। अर्थात् उसी ब्रह्म के जानने की इच्छा करना चाहिये ।१२

अद्वयमनाद्यन्तमशेषवेदवेदान्तवेद्यमनिर्देश्यमनिरुक्तमच्युतमाशास्यमद्वैतंचतुर्थंसर्वाऽधारमनाऽधारमनिर्वाच्यम्॥१३

वह ब्रह्म अद्वैत आदि अन्तसे शून्य सम्पूर्ण वेदान्त से जानने योग्य कथन करने से अयोग्य नाम से रहित अच्युत आशा करने योग्य अद्वैत तुरीय सर्व का आधार और स्वयं निराधार अनिर्वाच्य स्वरुप है ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययंतथारसन्नित्यमगन्धवच्च यत् ॥१४
परं विज्ञानाद्यद्गरिष्ठं प्रज्ञाना यद्विमहद्गुरुभ्योऽणु च ॥१५
स्थूलवताद्व्यमाचन्त्यरूपसूक्ष्माच्च त सूक्ष्मतरं विभाति ॥१६

जो ब्रह्म शब्द स्पश से रूप रस गन्ध से रहित नित्य अव्यय स्वरूप है और सर्व से पर विज्ञान से भी श्रेष्ठ प्रजाओं का जो प्रकाशक अणु से भी अणु है। वह सर्व से महान दिव्य अचिन्त्य स्वरूप सूक्ष्म रूप से प्रतीत होता है ॥१४-१५-१६

एतत् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित् ॥१७

प्रत्यगभिन्नरूप से नित्य ही स्वरूप में स्थित यह ब्रह्म जानना चाहिये। इससे परे कुछ भी नहीं है ॥१७

अघोषमव्यञ्जनमस्वरञ्च यत्तालुकण्ठोष्ठमनासिकंच यत् १८
अरेफ जातमुभयोष्मवर्जितं यदक्षरं न क्षरते कथञ्चित ॥१९

जो परमाक्षर स्वरूप ब्रह्म है। वह घोष से रहित है। क्यों कि प्रयत्न विशेष स्वरूप का अभाव है हल् संज्ञक वर्ण स्वरूप के अभाव से व्यञ्जन से रहित है। आकारादि स्वर के अभाव से अस्वर है। दो प्रकार के ऊष्म से रहित नासिका स्थानीय वर्णों से अबांध्य और रेफ से रहित तालु कण्ठ ओष्ठ को व्याप्त कर किसी प्रकार से क्षर भाव को नहीं प्राप्त होता अर्थात उनके व्यापारों से आविर्भूत नहीं होता वहीं निर्विशेष रूप से शेष रहता है ॥१८-१९

अगोचरं मनोवाचामवधूतादिसंप्लवम् ॥२०
सत्तामात्रप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥२१

वह ब्रह्म मन वाणी का अविषय, कुटी चक बहूदक, परमहंस, अवधूत आदिकों को संसार से तारने वाला, सत्तामात्र प्रकाश का भी प्रकाश अर्थात् मैं परमब्रह्म हूँ ऐसा जो बोध उसका भी सामान्यरूप से प्रकाश, अपने से अतिरिक्त भावना से रहित है ॥२०-२१

अहेयमनुपादेयमसामान्यविशेषणम् ॥२२
ध्रुवं स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ॥२३
निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ॥२४

हेय और उपादेय से रहित, सामान्य और विशेष से रहित कूटस्थ रूप होने से ध्रुव, चंचलता रहित गम्भीर स्वरूप, व्यापक तेज नहीं, और तम भी नहीं, सबसे पर निष्कल, निर्मल, शान्त उपद्रव से रहित ब्रह्म है ॥२२-२३-२४

न शून्यं नापि चाकारं न दृश्यं नापि दर्शनम् ॥२५
चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम् ॥ २६
चैत्यानुपातरहितं सामान्येन च सर्वगम् ॥ २७
अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ॥ २८
मनो वचोभ्यामग्राह्यं पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम् ॥ २९
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम् ॥३०

वह ब्रह्म न शून्य है, न आकार वाला है, न दृश्य है न दर्शन है। विषय से रहित चेतन स्वरूप, अनन्त अजर शिव है। सामान्य रूप से सर्वत्र व्यापक होने पर भी विषय सम्बन्ध से रहित, निरुपद्रव, आभास से रहित नाम रूप और कारण से

रहित वाणी मनका अविषय आकाशादि से भी पूर्ण सांसारिक सुख से भी सुख जो द्रष्टा दर्शन दृश्यादि त्रिपुटी से रहित पद है वह यह ब्रह्म ही है ॥२५--२६--२७--२८--२९-३०

शुद्ध सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥३१
अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम् ॥३२
निर्लेपकं निरापायं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३३
सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्दघनमद्वयम् ॥ ३४
प्रत्येगकरसं पूर्णमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ३५
अहेयमनुपादेयमनादेयमनाश्रयम् ॥ ३६
शुद्धं बुद्धं सदा मुक्तमनामकमरूपकम् ॥३७

शुद्ध सूक्ष्म, निराकार माया से रहित, प्रत्यक्षादि प्रमाण से अगम्य होने से अप्रमाण अनिर्देश्य, अप्रमेय इन्द्रियों से परे अलेप नाश से रहित, कूटस्थ, अचल ध्रुव, सद्घन, चिद् घन नित्य, आनन्द घन, उपचय अपचय से रहित, जीवाभिन्न एक रस पूर्ण अनन्त सर्वतोमुख, हेय, उपादेय, आदेय और आश्रय से रहित, शुद्ध बुद्ध सदा मुक्त स्वरूप नाम रूप से रहित ब्रह्म का स्वरूप है ॥३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७

सङ्कल्पसंचयवशाद्गलिते तु चित्ते संसार-
मोहमिहिकागलिताभवन्ति ॥ ३८
स्वच्छं विभाति शरदीव खमागतायां
चिन्मात्रमेकमजमाद्यमनन्तमन्तः ॥३९

संकल्प के नाश वश से चित्त के नष्ट हो जाने पर संसार

का मोहरूपी नीहार भी नाश हो जाता है। तब निर्विशेष आदि में होने वाला चिन्मात्र अज अनन्त, स्वच्छ रूप से शरद ऋतु के आने पर आकाश के समान अन्तःकरण में शोभायमान होता है ॥३८-३९

इस प्रकार यह नपुंशक लिङ्गरूप महावाक्य का वर्णन समाप्त हुआ। अब अगले प्रकरण में आत्म स्वरूप महावाक्य का वर्णन करेंगे।

॥ इति चतुर्दशप्रकरणम् ॥

अथ आत्मस्वरूपमहावाक्यानि

अब आत्म के स्वरूप प्रतिपादक महावाक्यों का वर्णन करते हैं।

आकाशो ह वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता

ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा ॥१

सर्वत्र प्रकाशित होने वाले का नाम आकाश है वही नाम और रूप को धारण करने वाला है। वे नामरूप जिसमें रज्जु सर्प के समान कल्पित हैं। वह ब्रह्म है वही अमृत है और वही आत्मा है। १

इदं सर्वं यदयमात्मा ॥ २

चिदेकरसो ह्ययमात्मा। ३

अतो ह्ययमात्मा ॥४

अनुज्ञाता ह्ययमात्मा ।५

अनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा ।।६

अविकल्पो ह्ययमात्मा ।।७

जिससे दृश्यमान यह सब जगत होता है वह यह आत्मा है। वस्तुत: तो यह आत्मा चेतन और अविकारी होने से चिन्त और एक रस है। अतएव सर्व का आधार होने से यह आत्मा व्यापक है। यह आत्मा ईश्वर रूप से सर्व जीवों का शासक है यह आत्मा अनुशासन करता हुआ विद्यमान है। अतएव अनुज्ञेय रस है। यह आत्मा सर्व विकल्प से रहित है ।।२-३-४ ५-६-७

देहादेः परतरत्वाद्‌ब्रह्मैव परमात्मा ।।८

देहादि से अत्यन्त पर होने के कारण ब्रह्म ही परमात्मा है ।।८

अखण्डैकरसो ह्ययमात्मा ।।९

यह आत्मा अखण्ड एक रस है ।।९

निर्गुणः साक्षीभूतो निष्क्रियो निरवयवात्मा १०

यह आत्मा गुण से रहित सर्व का साक्षी क्रिया से रहित निरवयव है ।।१०

विरजः पर आकाशादज आत्मा महान्ध्रुवः ।।११

यह आत्मा रज आदि गुणों से रहित है अतएव अति स्वच्छ स्वरूप है। आकाश से भी परे अज अपरिछिन्न ध्रुव है ।।११

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥१२

यह परमात्मा रूप एक देव सर्व भूतों में छिपा हुआ सर्वव्यापक और सर्वभूतों का अन्तरात्मा है ॥१२

निःशब्दं परमं ब्रह्म परमात्मा समीर्यते । १३

शब्द से रहित पर ब्रह्म ही परमात्मा कहा जाता है ॥१३

सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्माव्यवस्थितः ॥१४

सावयव और निरवयव सर्व पदार्थों में आत्मा स्थित है ॥१४

सर्वदा सर्वकृत्सर्वः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ १५

जो ब्रह्म दृष्टि से सर्व कार्य का कर्ता है वह ज्ञान दृष्टि से सर्व परमात्मा कहा जाता है ॥१५

अनाद्यन्तावभासात्मा परमात्मेहविद्यते ॥ १६

इस संसार दशा में सो आदि, मध्य और अन्त से शून्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा है ॥१६

नित्यः सर्वगतोह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ॥ १७

आत्मा नित्य सर्व व्यापक कूटस्थ सब दोषों से शून्य है ॥१७

तत्परः परमात्मा च श्रीरामः पुरूषोत्तमः ॥ १८

जो लोक में श्रीराम पुरुषोत्तम कहा जाता है, वह तत्पद का लक्ष्य ब्रह्म है ॥१८

सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः ॥ १९

सर्वातीतस्वभावात्मा नाडान्तर्ज्योतिरेव सः ॥ २०

अज्ञानी की दृष्टि में कार्य कारण वाला प्रतीत होने पर भी

ज्ञानी की दृष्टि कार्य कारण से रहित सबसे अतीत स्वभाव स्वरूप प्रणवनाद और उसके अन्दर ज्योतिः स्वरूप परमात्मा है ॥१९-२०

निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥२१
सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः ॥२२

आत्मा सविकल्प से रहित निर्विकल्प स्वरूप है और आदि, मध्य, अन्त से रहित सदा समाधि से शून्य है ॥२१-२२

प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा, अहं ब्रह्मास्मिवर्जितः ॥२३
तत्त्वमस्यादिहीनात्मा, अयमात्मेत्यभावकः ॥२४

प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, यह क्रम से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद के महावाक्य हैं। इन समस्त वाक्यों से ब्रह्म का स्वरूप अगम्य है ॥२३-२४

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ॥ २५
सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मऽविशेषकः ॥ २६

आत्मा सर्व शब्द वाक्यों से रहित और ओंकार से वाच्य विश्व विराडादि से भी रहित सर्वत्र पूर्ण सर्व विशेषों से रहित है ॥२५-२६

शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥२७
आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः ॥ २८
शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः ॥२९
सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किञ्चिज्जगद्भयम् ॥३०

आत्मा शुद्ध चैतन्य रूप है, सब सिद्धि से रहित है। आनन्द स्वरूप है। प्रिय है, मुक्त स्वरूप है। बन्ध रहित है। शून्य स्वरूप है। सूक्ष्म रूप है, विश्व रूप है और विश्व से शून्य है। सत्ता मात्र स्वरूप आत्मा है। अतएव उससे अन्य जगत् रूपी भय नहीं है क्योंकि द्वैत से ही भय होता है। उसमें द्वैत है नहीं ॥२७–२८–२९–३०

अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः ॥३१
नामरूपविहीनात्मा परसम्वित्सुखात्मकः ॥ ३२
साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किञ्चित्किञ्चिन्न किंचन ॥३३

आत्मा सब परिच्छेदों से रहित है। अणु स्थूलता आदि से रहित है। नाम रूप से रहित आत्मा पर ज्ञान सुख स्वरूप है। साक्षी और साक्षी नहीं इन दोनों से हीन आत्मा कुछ है और कुछ नहीं है इन सबसे शून्य है ॥३१–३२–३३

मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः ॥ ३४
द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतादिवर्जितः ॥ ३५

मुक्त और अमुक्त स्वरूप आत्मा है मुक्त और अमुक्त से वर्जित भी है। द्वैत और अद्वैत स्वरूप आत्मा है। द्वैत और अद्वैत से रहित भी है ॥३४–३५

निष्कलात्मा निर्मलात्मा शुद्धात्मा पुरुषात्मकः ॥ ३६

आत्मा कलना से रहित है। निर्मल है शुद्ध स्वरूप और पुरुष स्वरूप है ॥३६

आत्मेतिशब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः ॥ ३७
सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मासनातनः ॥ ३८

जो आत्मा, इस शब्द से रहित है और आत्म शब्द के अर्थ से भी रहित है सच्चिदानन्द से भी रहित जो है वही सनातन आत्मा है ॥३७-३८

यस्य किञ्चिद्बहिर्नास्ति किंचिदन्तः कियन्न च ॥३६
यस्य लिङ्ग प्रपंञ्चम्वा ब्रह्मैवात्मा न संशयः ॥४०

जिसके बाहर कुछ नहीं है, और अन्तर भी। तथा परिणाम भी नहीं है। जिसका लिङ्ग संसार कहा है। वह आत्मा ही ब्रह्म है इसमें कुछ भी संशय नहीं ॥३६-४०

इस प्रकार आत्म स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन किया। अब अगले प्रकरण में सर्व स्वरूप बोधक वाक्यों का वर्णन करेंगे।

॥ इति पञ्चदशप्रकरणम् ॥

अथ सर्वस्वरूपवाक्यानि

अब सर्वस्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं।

ओङ्कार एवेदं सर्वम् ॥१

यह सब जगत् ओंकार ही है अर्थात ब्रह्म है ॥१

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः एवेदं सर्वम् ॥२

अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतः अहमुत्तरतः अहमेवेदं सर्वम् ॥ ३

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मपश्चादात्मापुरस्तादात्मा-दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वम् ॥४

इन तीनों वाक्यों में स, अहम्, आत्मा तीन शब्द प्रथम में आए हैं। स से तत्पदलक्ष्य और अहं से त्वंपदलक्ष्य और आत्म शब्द से केवल ब्रह्म कहा गया है। अतएव ऊपर, नीचे, पीछे, आगे, दाहिने, बाएँ सर्वत्र ब्रह्म ही परिपूर्ण है ॥२-३-४

आत्मैवेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥५

एतद्ब्रह्मैव तत्सर्वम् ॥६

नारायण एवेदं सर्वम् ॥७

सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वम् ॥८

सत्तामात्र हीदं सर्वम् ॥९

मत्स्वरूपमेवेदं सर्वम् ॥१०

यह पिण्डाण्ड शरीर सर्व आत्मा ही है क्योंकि पिण्डाण्ड कल्पित है। यह ब्रह्म के अज्ञान से कल्पित ब्रह्माण्ड सब ब्रह्म ही है। पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड के हेय अंश के नाश होने पर यह दोनों पर अभिन्न ब्रह्म हैं अर्थात् सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यह सब नारायण ही है। यह सब सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह सब जगत् केवल सत्तारूप है। यह सब मेरा स्वरूप ही है ॥५-६-७-८-९-१०

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ॥११

भूत भविष्य वर्तमानआदि से परिछिन्न जगत सनातन ब्रह्म ही है ॥११

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ॥१२
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥१३

ब्रह्म विष्णु इन्द्र रुद्र आदिकों से अधिष्ठित यह समस्त संसार ब्रह्म ही है। ब्रह्म से अन्य कुछ भी नहीं ॥१२-१३

मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् १४
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥१५

जैसे मरु भूमि में कल्पित जल मरु भूमि मात्र है तैसे चेतन में कल्पित सर्व संसार विचार से चेतन मात्र है ॥१४-१५

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १६
यत्किंचिद्यन्न किंचिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १७

संसार से रहित जीव चेतन स्वरुप ही है। वस्तुतः सर्व जगत चेतन स्वरूप ब्रह्म ही है। जो कुछ है और जो कुछ नहीं है। सब चेतन स्वरूप ही है ॥१६-१७

अखण्डैकरसं सर्वं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि ॥ १८
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १९

जो जो वस्तु है वह सब अखण्ड एक रस चेतन मात्र है। भूत वर्तमान भविष्य सब चेतन मात्र ही है ॥१८-१९

ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२०
यच्च यावच्च दूरस्थं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२१

ज्ञाता चिन्मात्र है और सब चेतन मात्रही है जो जितने परिमाण में दूर है और समीप है वह सब चेतन मात्र है ॥२०-२१

चिन्मात्रान्नास्ति लक्ष्यचञ्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२२

चेतन रुप से अन्य लक्ष्म नहीं है सब चेतन मात्र ही है ॥२२

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयञ्जगत् ॥२३

आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति शर्वमात्ममयञगत् ॥ २४

आत्मा से अन्य शरण नहीं है क्योंकि सर्व संसार आत्ममय है। आत्मा से भिन्न त्वचा नहीं है क्योंकि सब आत्ममय जगत् है ॥२३-२४

सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥ २५

सर्वरूप खल्विदं ब्रह्म नित्यचिद्घनमक्षतम् ॥ २६

यह सब जगत् ब्रह्म ही है और शुद्ध आत्मस्वरूप सब चेतन मात्र अद्वैत है—यह सब जगत् नित्य चिद्घन अक्षत ब्रह्म ही है ॥२५-२६

समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मेदमाततम् ॥ २७

न त्वं नाहं न चान्यं वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ २८

समस्त दृश्य ब्रह्म है सब यह आत्मा ही विस्तृत है। न तुम हो, न मैं हूं, न अन्य है। सब केवल ब्रह्म ही है ॥२७-२८

न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न तन्मयम् ॥२९

किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ॥३०

वह वस्तु नहीं है जिसमें मैं न हूँ। और वह नहीं है जो उस ईश्वरमय न हो। जब सब चेतनमय विस्तृत है तब अन्य किसकी इच्छा करूँ ॥ २६–३०

भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव सर्वं ब्रह्मैव केवलम् । ३१

न देहो न च कर्म्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम ॥३२

भ्रम और अभ्रम नहीं है सब भ्रमादि केवल ब्रह्म ही है। न देह है न कर्म है सब केवल ब्रह्म ही है ॥३१–३२

लक्षणात्रयविज्ञान सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥३३

जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और भाग त्यागल्लक्षणा का विज्ञान सब केवल ब्रह्म ही है ॥३३

जगन्नाम्नाचिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥३४

जगत नाम से चेतन प्रतीत हो रहा है। अतएव सब केवल ब्रह्म ही है ॥३४

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्म मात्रमसन्न हि ॥३५

ब्रह्ममात्र व्रतं सर्व ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ३६

ब्रम्हमात्र श्रुतं सर्व स्वयं ब्रम्हैव केवलम् ॥ ३७

ब्रम्हैव सर्वं चिन्मात्र ब्रम्हमात्र जगत्त्रयम् ॥ ३८

यह सब जगत् ब्रह्ममात्र है। असत्य की सत्ता नहीं है सब व्रत ब्रह्ममात्र है। मधुरादि सर्वरस ब्रह्ममात्र है। और सुख ब्रह्ममात्र है। सब सुना हुआ ब्रह्ममात्र है। सब केवल स्वयं

ब्रह्म ही है। सब चेतन स्वरूप ब्रह्म ही है। तीनों जगत ब्रह्ममात्र है ॥३५–३६–३७–३८

सर्वं प्रशान्तमजमेकमनादिमध्यमाभास्वर स्वदनमात्रमचैत्य चिह्मम् ॥ ३९

सब शान्त अज एक आदि मध्य अन्त से रहित प्रकाश स्वरूप स्वाद स्वरूप ज्ञानस्वरूप विषयरूप लिङ्ग से रहित ब्रह्म है ॥३९

सर्वं प्रकान्तमिति शब्दमयी च दृष्टिर्बोधार्थमेव हि मुधैव तदोमितीदम् ४०

यह सब प्रशान्त है इत्यादि शब्दमय ज्ञान प्रबोध के लिये ही है। वास्तव में सब मिथ्याही है। यह सब ओंकार स्वरूप ब्रह्म ही है ॥४०

इस प्रकार सर्वस्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन किया। अब अगले प्रकरण में ब्रह्मस्वरूप वाक्यों का वर्णन करेंगे।

॥ इति षोडशप्रकरणम् ॥

अथ ब्रह्मस्वरूपवाक्यानि।

अब ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करते हैं—

सर्वं ह्येतद् ब्रह्म ॥१

अयमात्म ब्रह्म ॥२

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥३

प्रज्ञाप्रतिष्ठाप्रज्ञानं ब्रह्म ॥४

तदेतद्ब्रम्हापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रम्ह सर्वानुभूः । ५

यह दृश्यमान संसार सब ब्रह्म है। यह जीव ब्रह्म है। सत्य ज्ञान अनन्त स्वरूप ब्रह्म है। प्रज्ञा स्वरूप प्रतिष्ठा स्वरूप प्रज्ञान ब्रह्म है। वह यह तत्त्वं पद का लक्ष्य ब्रह्म अपने कारण के अभाव होने से अपूर्व है। और कार्य के अभाव होने से अनपर है। अतएव उसके बाह्य और आभ्यन्तर कुछ भी नहीं है सर्व ब्रम्हज्ञानियों का अनुभव स्वरूप है ॥ १-२-३-४-५

विज्ञानमानन्दं ब्रम्ह ॥६

अजरोऽमरोमृतोऽभयोब्रम्हाभयं वै ब्रम्ह ॥७

सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारण पुरुषमकारणं परं ब्रम्होम् ॥८

स्वयं प्रकाशः स्वयं ब्रम्ह ॥९

ब्रह्म विज्ञान और आनन्द-स्वरूप है। यह जीव अजर अमर अमृत अभय ब्रह्म स्वरूप है क्योंकि ब्रह्म अभय है। सब भूतों में स्थित एक नारायण कारण पुरुष रूप वस्तुतः कारण से रहित सब से पर-प्रणव का अर्थभूत ब्रह्म है अपने आप ही प्रकाशरूप ब्रह्म है ॥ ६-७-८-९

तदेतद्ब्रह्मं स्वयं प्रकाशमहानन्दमात्मैवैतदभयममृतमेतद्ब्रम्ह ॥१०

वह यह ब्रह्म अद्वैत स्वयं प्रकाश महानन्द अभय अमृत आत्म स्वरूप है॥ १०

सदेव पुरस्तात् सिद्ध ब्रम्ह ॥११

आकाशवत्सूक्ष्मं केवलसत्त मात्रस्वभाव परं ब्रम्ह ॥१

अद्वितीममखिलोपाधिविनिर्मुक्त तत्सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्यनन्तं नित्य शिव शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्य ब्रम्ह ॥१३

एकमेवाद्वितीयं ब्रम्ह ।.१४

सर्वदानवच्छिन्नं परं ब्रम्ह ॥१५

सृष्टि से पहिले भी सदा ही सिद्ध ब्रह्म रहता है। आकाश के समान सूक्ष्म केवल सत्तामात्र स्वभाव पर ब्रह्म है। समस्त उपाधियों से रहित वह ब्रह्म सकल शक्ति से विशिष्ट आदि अनन्त से रहित नित्य शिव शान्त निर्गुण इत्यादि शब्दों से वाच्य और अनिर्वाच्य चेतन स्वरूप है। एक अद्वैत ब्रह्म है। सदा सर्व परिच्छेदों से रहित होने के कारण ब्रम्ह अनवच्छिन्न है॥ ११-१२-१३-१४-१५

सच्चिदानन्दतेजः कूटस्थरूपं तारकं ब्रम्ह ॥ १६

तन्नित्यमुक्तसविक्रियं सत्यज्ञानानन्तानन्दपरिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीय ब्रम्ह ॥ १७

चित्स्वरूपं निरञ्जन पर ब्रम्ह ॥१८

तत्वपदलक्ष्य प्रत्यगभिन्न ब्रम्ह ॥१९

अखण्डार्थं परं ब्रह्म ॥२२

सर्वकालावाधितं ब्रह्म ॥२१

सच्चिदानन्द तेज कूटस्थ रूपतारक ब्रह्म है वह नित्य मुक्त विकार से रहित सत्य ज्ञान अनन्त आनन्द से परिपूर्ण सनातन एक अद्वितीय ब्रह्म है। चेतन स्वरूप माया से रहित परब्रह्म है तत् और त्वं पद का लक्ष्य प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म है। अखण्ड अर्थ स्वरूप परब्रह्म है। सवकाल से अवाधित ब्रह्म है॥ ६-१७ १८-१९-२०-२१

सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म ॥२२

आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म ॥२३

मायातीतगुणातीतं ब्रह्म ॥२४

अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म ॥२५

अद्वितीयपरमानन्दनित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वरूप व्यापकाभिन्नापरिच्छिन्नं ब्रह्म ॥२६

सगुण और निर्गुण स्वरूप ब्रह्म है। आदि मध्य और अन्त से शून्य ब्रह्म है। माया और गुणों से अतीत ब्रह्म है अनन्त अप्रमेय अखण्ड परिपूर्ण ब्रह्म है। अद्वितीय परम आनन्द नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्य स्वरूप व्यापक अभिन्न परिच्छेद से रहित ब्रह्म है॥ २२-२३-२४-२५-२६

सच्चिदानन्दस्वप्रकाशं ब्रह्म ॥२७

मनोवाचामगोचरं ब्रह्म ॥२८

देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म ॥२६

अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म ॥३०

तुरीयं निराकारमेकं ब्रह्म ॥३१

अद्वैतमनिर्वाच्यं ब्रह्म ॥३२

शिवं प्रशान्तममृतं परञ्च ब्रह्म ॥३३

सत् चित् आनन्द स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्म है। मन वाणी का अविषय ब्रह्म है। देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित ब्रह्म है। समस्त प्रमाणों का अविषय ब्रह्म है। तुरीय आकार से रहित ब्रह्म है। अनिर्वाच्य अद्वैत स्वरूप है। शिव प्रशान्त और सबसे परब्रह्म है ॥२७-२८-२६-३०-३१-३२-३३

यदेकमक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं ब्रह्म ॥३४

अभावादित्यो ब्रह्म ॥३५

ओमित्येतदक्षरं परं ब्रह्म ॥३६

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥३७

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥३८

जो एक अक्षर निष्क्रिय शिव है वही सन्मात्र ब्रह्म है यह प्रकाश स्वरूप सूर्य ब्रह्म है। ओम् यह अक्षर स्वरूप परब्रह्म है। यह ब्रह्म ही अमृत स्वरूप आगे पीछे दायें बायें नीचे ऊपर विस्तृत है यह विश्व श्रेष्ठ ब्रह्म है ॥३४-३५-३६-३७-३८

तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥३६

चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मस्यपि ॥४०

ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥४१

एतद्भावविनिर्मुक्तं तन्ब्रम्ह ब्रम्हतत्परम् ॥४२

चिन्मात्रात्परमं ब्रम्ह चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ॥४३

अखण्डैकरसं ब्रम्ह चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥४४

सदोदितं परं ब्रम्हज्योतिषामुदयो यतः ॥४५

तस्मिन्प्रलीयते शब्दस्तत्परं ब्रम्ह गीयते ॥४६

वही ब्रह्म निष्कलङ्क निर्विकल्प माया से रहित है। चेतन एक ब्रह्म है अतएव प्रज्ञान स्वरूप ब्रह्म मुझ में भी है। जो स्वप्रकाश रूप से वर्णित है वही ब्रह्म शब्द से कहा गया है। इस दृश्यमान भाव से रहित जो कुछ भी है वह सब से परे परब्रह्म स्वरूप है। सामान्य ज्ञान से विलक्षण परब्रह्म है। चेतनस्वरूप निविशेष ज्ञान से परं कुछ भी नहीं है अखण्ड एक रस ब्रह्म चेतनरूप से अतिरिक्त नहीं है। जिस ब्रह्म से सूर्यादि ज्योतियों का उदय होता है वह ब्रह्म सदा उदय स्वरूप है। जो ब्रह्म सर्व शब्दादि के लय का अधिकरण है वह परब्रह्म रूप कहा जाता है ॥३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६

सर्वशक्तिपरं ब्रम्ह नित्यमापूर्णमद्वयम् ॥४७

सब शक्तिमान परब्रह्म है और नित्य परिपूर्ण अद्वय स्वरूप है ॥४७

सत्ता सर्वपदार्थानां गम्यं ब्रम्हाभिधं पदम् ॥४८

परं ब्रम्ह परं तत्त्वं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥४९

अक्षरं परमं ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥५०
ब्रम्हैवैकमनाद्यन्तमब्धिवत्प्रविगुम्भते ॥५१
न किञ्चिद्भावनाकारं यत्तद् ब्रम्ह परं विदुः ॥५२
एकमेवाद्वयं ब्रम्ह नेह नानास्ति किञ्चन् ॥५३
ब्रम्हैव विद्यते साक्षाद्वस्तुतो वस्तुतोऽपि च ॥५४
तद्विद्याविषयं ब्रम्ह सत्यज्ञानसुखाद्वयम् ॥५५
शान्तञ्च तदतीतञ्च परं ब्रम्ह तदुच्यते ॥५६
अनुभूतिपरं तस्मात् सारं ब्रम्हेति कथ्यते ॥५७
यदिदं ब्रम्ह पुच्छाख्यं सत्यज्ञानाद्वयात्मकम् ॥५८
सद्रूपं परमं ब्रम्ह त्रिपरिच्छेदवर्जितम् । ५९
तन्ब्रम्हानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ॥६०

घट पटादि सर्व पदार्थों की सत्ता ब्रह्म पद से जानना चाहिये सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म निर्विशेष निरञ्जन अक्षर परम तत्व है। एक ब्रह्म ही आदि अन्त से रहित समुद्र के समान प्रकाशित होता है। जो कुछ भावना का अविषय है उसको वह तत्वज्ञानी जानते हैं एक ही अद्वय ब्रह्म है। इसमें नाना कुछ नहीं है सत्य और असत्य स्वरूप से साक्षात् ब्रह्म ही विद्यमान है। विद्या का विषय सत्य ज्ञान सुख अद्वय स्वरूप ब्रह्म है। शान्त और माया से परे ब्रह्म तत्व कहा जाता है। सब अनुभव से परे जो सार है वह ब्रह्म कहा जाता है जो यह रूप का आधार सत्य ज्ञान अद्वय सत्ता रूप तीन परिच्छेद से रहित द्वन्द्व से हीन निर्गुण सत् चिद्घन है वही ब्रह्म तत्व है ॥४८ से ६० तक

सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥६१

प्रज्ञानमेव तद्ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् ॥६२

अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रूपं ब्रम्हतद्भवेत् ॥६३

सब का अधिष्ठान द्वन्द्व से रहित परब्रह्म सनातन है। सत्य प्रज्ञान स्वरूप वह ब्रह्म प्रज्ञा नहीं है। सब जगत (अस्ति) है ऐसे कहने से केवल सत्य स्वरूप ब्रह्म ही होता है ॥६१-६२-६३

भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भान ब्रम्हैव केवलम् ॥६४

(भाति) प्रकाशित होता है ऐसा कहने पर सब जगत प्रकाश स्वरूप केवल ब्रह्म ही है ॥ ६४

ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥६५

चिदाकाश केवल सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म स्वरूप है ॥६५

ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यजगन्न च ॥६६

ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फलं न हि ॥६७

ब्रह्मणोऽन्यद्दणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं न हि ॥६७

ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यदसद्वपुः ॥६९

ब्रह्म से अन्य कुछ। नहीं। ब्रह्म से अन्य जगत् नहीं। ब्रह्म से अन्य मैं नहीं। ब्रह्म से अन्य कोई फल नहीं। ब्रह्म से अन्य ऋण नहीं। ब्रह्म से अन्य पद नहीं। ब्रह्म से अन्य गुरु नहीं। ब्रह्म से अन्य सब असत्य स्वरुप है ॥६६ से ६९ तक

नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥७०

नित्य आनन्दमय केवल ब्रम्ह ही सदा स्वयं स्थित रहता है॥७०

बीजं मायाविनिर्मुक्तं परं ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥७१
मद्रूपमद्वयं ब्रह्म आदि मध्यान्तवर्जितम् ॥७२
सर्वत्रावस्थितं शान्तं चिद्ब्रह्मेत्यनुभूयते ॥७३

सब.का कारण मायोपाधिक ईश्वर बीज शब्द से कहा जाता है और माया से रहित परब्रह्म कहा जाता है ॥७१-७२-७३

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि ॥७४
नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम् ॥७५

सर्व अध्यात्म शास्त्रों का सिद्धान्त सब का निराकरण करना ही है। अतएव न माया है न अविद्या है सर्व ग्लानि से रहित शान्त स्वरूप यह सब ब्रह्ममात्र ही है।७४-७५

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः ॥७६
स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ७७

अपने स्वरूप में आरोपित (कल्पित) समस्त प्रतीयमान वस्तुओं के निराकरण करने पर पूर्ण अद्वैत क्रिया से रहित स्वयं परब्रह्म ही शेष रहता है ॥७६-७७

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ॥७८
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥७९

राम ही परब्रह्म है राम ही पर तप है। राम ही पर तत्त्व है श्रीराम ही तारक ब्रह्म है ॥७८-७९

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥८०

सच्चिदानन्द अद्वय चेतन स्वरूप ब्रह्म ही है। ८०

ऋतं सत्य परं ब्रह्म सर्वसंसारभेषजम् ॥८१

व्यवहारिक और पारमार्थिक स्वरूप परब्रह्म ही संसार रूपी रोग की औषधि है ॥८१

ब्रह्मचिद् ब्रह्मभुवनं ब्रह्मभूतपरम्परा ॥८२

ब्रह्माहं ब्रह्मचिच्छत्रुर्ब्रह्मचिन्मित्रबांधवाः ॥८३

समस्त भूतों की परम्परा और सब भुवन आत्मज्ञ की दृष्टि से ब्रह्म रूप ही प्रतीत होता है। मैं ब्रह्म हूँ और शत्रु मित्र बान्धव सभी चेतन ब्रह्म स्वरूप ही हैं ॥८२-८३

ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते ॥८४

जगद्रूपतयाप्येतद् ब्रह्मैव प्रतिभासते ॥८५

ब्रह्मरूप से केवल ब्रह्म ही प्रतीत होता है। और जगत रूप से भी केवल ब्रह्म ही प्रतीत होता है ॥८४-८५

विद्याविद्यादिभेदेन भावाभावादिभेदतः ॥८६

गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ॥८७

विद्या और अविद्या भेद से भाव और अभाव के भेद से, गुरु और शिष्य आदि के भेद से ब्रह्म ही प्रतीत होता है ॥८६-८७

इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः ॥८८

कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंप्रभम् ॥८९

यह ब्रह्म है परब्रह्म है सत्य ब्रह्म है वह प्रभु है। काल ब्रह्म है कला ब्रह्म है। सुख ब्रह्म है। स्वयं प्रकाश ब्रह्म है ॥८८-८९

कर्कं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम् ॥६०
दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ॥६१
लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः ॥६२
पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥६३
जीव एव सदा ब्रह्म स्वयं ब्रह्म सनातनमिति ॥६४

एक ब्रह्म है। दो ब्रह्म है। मोह ब्रह्म है शमदमादिक ब्रह्म है दोष ब्रह्म है गुण ब्रह्म है। दम ब्रह्म है शान्त ब्रह्म है व्यापक प्रभु ब्रह्म है। लोक ब्रह्म है गुरु ब्रह्म है शिष्य ब्रह्म है सदा शिव स्वरूप ब्रह्म है। पूर्व और परब्रह्म है। शुद्ध ब्रह्म है शुभ और अशुभ ब्रह्म है। जीव ही स्वयं सनातन सदा ब्रह्म स्वरूप है ॥६० से ६४ तक

इस प्रकार ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादक वाक्यों द्वारा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया। जिसके समझ लेने से संसार के समस्त दुःख दूर हो जाते हैं।

अब अगले प्रकरण में अवशिष्ट स्वरूप बोधक वाक्यों का निरूपण करेंगे।

॥ इति सप्तदश प्रकरणम् ॥

अथावशिष्टस्वरूपबोधकवाक्यानि ।

अब अवशिष्ट स्वरूप बोधक वाक्यों को लिखते हैं।

सर्वं विशेषन्नेति नेतीति विहाय
यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म ॥१

आत्मा के अज्ञान से कल्पित सब विशेषों को नेति, नेति (यह नहीं यह नहीं) वाक्यों के द्वारा त्याग कर कर जो शेष रहता है वह अद्वैत ब्रह्म है ॥१

जीवभावजगद्भावबाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यते ॥२

जीव भाव और जगत भाव के बाध होने पर आत्मा से अभिन्न रूप ब्रह्म ही शेष रहता है ॥२

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥३
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥४

वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है। पूर्ण की पूर्णता लेकर पूर्ण ही शेष रहता है ॥३-४

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥५
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥६

यह जीव अविद्यारूप कार्य उपाधि वाला है। और मायरूप कारण उपाधि वाला ईश्वर है। कार्य और कारण को त्याग कर पूर्ण बोध ही शेष रहता है ॥५-६

ततास्तमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ।७

अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किञ्चिदवशिष्यते ॥८

जिस कारण से ब्रह्म निर्विशेष है। तिस कारण से निश्चल गम्भीर है। वह व्यापक तेज नहीं और तम नहीं। नाम से रहित और अभिव्यक्ति से रहित कुछ सत् शेष रहता है ॥७-८

सङ्कल्पमनसीभिन्ने न कदाचन केनचिद् ॥९

सङ्कल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ॥१०

सङ्कल्प और मन किसी से कहीं भिन्न नहीं हैं। समस्त सङ्कल्पों के नाश होने पर आत्मा ही शेष रहता है ॥९-१०

महाप्रलयसम्पत्तौ ह्यसत्तां समुपागते ॥११

अशेषदृश्ये सर्गादौ शान्तमेवावशिष्यते ॥१२

संसार की सृष्टि के आदि में और महाप्रलय में सम्पूर्ण दृश्य की असत्ता प्राप्त होने पर शान्त ही शेष रहता है ॥११-१२

खेदाह्लादविलासेषु स्वात्मकर्तृतयानया ॥१३

स्वसङ्कल्पे क्षयं याते समतैवावशिष्यते ॥१४

इस आत्मा की कर्तृता से अपने सङ्कल्प के क्षय होने पर सुख दुःख आदि में भी समता ही शेष रहती है ॥१३-१४

समता सर्वभावेषु यासौ सत्यपरास्थितिः ॥१५

परमामृतनाम्नी सा समतैवावशिष्यते ॥१६

संसार के समस्त पदार्थों में जो यह सत्य परास्थिति रूप समता है वह परम अमृत नाम्नी समता ही शेष रहती है ॥१५-१६

कालत्रयमुपेक्षित्वा हीनायाश्चैत्यबन्धनैः ॥१७

चितश्चैत्यमुपेक्षित्र्याः समतैवावशिष्यते ॥१८

भूतादि तीनों कालों की उपेक्षा करके दृश्य बन्धन से हीन दृश्य की उपेक्षा करने वाली चित समता रूप से ही स्थित होती है ॥ १७–१८

सा हि वाचामगम्यत्वादसत्तामिव शाश्वतीम् ॥१९

नैरात्म्यसिद्धान्तदशामुपयातेऽवशिष्यते ॥२०

जैसे वह जीव संवित् वाणी और मन से अगम्य रूपता से शाश्वती (सदा रहने वाली) माया को प्राप्त होती है। वैसे ही किसी तरह ज्ञान उदय होने से निरात्म भाव को प्राप्त हुई शेष रहती है। अर्थात् आत्मा जीव है और अनात्मा देहादि हैं। इस तरह जिस पारमार्थिक दशा में बुद्धि आविर्भूत होती है वह नैरात्म्य सिद्धान्त दशा है। क्यों कि अविवेक अवस्था में देहादि को ही आत्मा मानता था। ज्ञान के उदय होने पर देहादि अनात्म सिद्ध हो जाते हैं ॥१९–२०

यावद्यावन्मुनिश्रेष्ठ स्वयं सन्त्यज्यतेऽखिलम् ॥२१

तावत्तावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते ॥२२

हे मुनि श्रेष्ठ, जितना जितना अपने आप सब को त्यागता है। उतना उतना पर ज्ञान स्वरूप परमात्मा ही शेष रहता है ॥२१–२०

अभ्यासेन परिस्पन्दे कणानां क्षयमागते ॥२३

ततः प्रशमयाशाति निर्वाणमवशिष्यते ॥२४

अभ्यास करने से प्राणों की क्रिया क्षय होने पर मन परम शान्त होता है निर्वाण ही शेष रहता है ॥२३-२४

ज्ञेयवस्तुपरित्यागे विलयं याति मानसम् ॥२५

मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते ॥२६

ज्ञेय वस्तु के परित्याग करने पर मनाविलय भाव को प्राप्त होता है। मन के विलय होने पर कैवल्य ही शेष रहता है ॥२५-२६

यतो वाचो निवर्तन्ते विकल्पकलनान्विताः ॥२७

विकल्पसंक्षयाज्जन्तोः पदं तदवशिष्यते ॥२८

विकल्प रूपी कलना से युक्तवाणी जिस निर्विशेष ब्रह्म से निवृत्त होती है विकल्पों के क्षय होने पर वह निर्विलेप ब्रह्म ही शेष रहता है ॥२७-२८

चिद्व्योमैव किलास्तीह परापरविवर्जितम् ॥२९

सर्वावस्थासु भवतश्चैतत् यत्कल्पान्तेऽवशिष्यते ॥३०

सब अवस्था में भी विषय रहित उत्कृष्टता और अप्रकृष्टता से रहित कल्पान्त में जो चिदाकाश रहता है वही शेष रहता है ॥२९०३०

पञ्चरूपपरित्यागादर्थरूपप्रहाणतः ॥३१

अधिष्ठानं परन्तत्वमेकं सच्छिष्यते महत् ॥३२

पञ्च तत्त्वों के त्याग करने से और उसका कार्यरूप सृष्टि

के परित्याग से सर्व का अधिष्ठान अपरिच्छिन्न पर तत्व स्वयं एक सद्रूप शेष रहता है।।३१-३२

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः ॥३३

स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥३४

सम्पूर्ण वेदान्तों के सार को मैं यथार्थ रूप से कहता हूं। आप ही मर कर आप ही उत्पन्न होकर आप ही शेष रहता है ॥३३-३४

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं यथारसं नित्यमगन्धवच्चयत् ॥३५

अनाद्यनन्तो महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमलं निरामयम् ॥३६

जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से रहित अव्यय आदि अन्त से रहित महत तत्व से परे ध्रुव निर्मल उपद्रव से रहित है वही शेष रहता है ॥३५-३६

इस प्रकार से इस प्रकरण में अवशिष्ट स्वरूप प्रतिपादक महावाक्यों का वर्णन किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि समस्त प्रपञ्च के निषेध करने पर जो शेष रहता है वही परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है उसी को जानना चाहिये। अब अगले प्रकरण में फल स्वरूप महावाक्यों का वर्णन करेंगे।

॥ इति अष्टादशप्रकरणम् ॥

अथ फलस्वरूपमहावाक्यानि ।

अथ फलस्वरूप प्रतिपादक महावाक्यों को लिखते हैं—

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ॥१

जो निश्चय करके इस निर्विशेष ब्रह्म को जानता है। वह उसी समय ब्रह्म ही होता है ॥१

ब्रह्मविदाप्नोति परम् ॥२

ब्रह्मज्ञानी परम ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥२

ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति ॥३

ब्रह्म में स्थित मुनि अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥२

तरति शोकमात्मवित् ॥४

आत्मज्ञानी समस्त शोकों को तर जाता है ॥४

य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति ॥५

जो यह जानता है कि मैं ब्रह्म हूं। वह यह सब होता है ॥५

स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्मविद्विद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥६

वह यह ब्रह्मज्ञानी विद्वान ज्ञान के समकाल में ही पुण्य पाप से रहित हुआ। ब्रह्म ही कों प्राप्त करता है ॥६

य एवं निर्बीज एव स भवति ॥७

जो इस तरह निर्बीज ब्रह्म को जानता है वह निर्बीज ही होता है ॥७

तद्ब्रह्मैवाहमस्मीति ब्रह्म प्रणवमनुस्मरन् भ्रमरकीट-

न्यायेन शरीरत्रयमृत्सृज्य सन्न्यासेनैव देहत्यागं करोति स कृतकृत्यो भवति ॥८

वह ब्रह्म हा मैं हूँ इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप प्रणव का स्मरण करता हुआ जो भ्रमर कीठ न्याय की तरह तीनो देहों को त्याग कर सन्यास से ही देह त्याग करता है वह कृत्य कृत्य होता है। अर्थात् उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता है ॥८

तमेवं ज्ञात्वा विद्वान् मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥९

तदेवं विद्वांस इहैवामृता भवन्ति ॥१०

जो परमात्मा इस प्रकार निर्विशेष चेतनरूप से कहा गया है उसको अपने आत्मारूप से जानकर विद्वान् मृत्यु के मुख से छूट जाता है। जिस समय निर्विशेष ब्रह्म को आत्मरूप से जानता है विद्वान उसी समय जीवन्मुक्त होता है ॥९-१०

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं

मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥११

आदि मध्य अन्त से रहित महत्तत्व से पर ध्रुव स्वरूप उस ब्रह्म को जान कर मृत्यु के मुख से छूट-जाता है ॥११

यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥१२

जीव जिसको जानकर बन्धन से मुक्त होता है। और मुक्ति को प्राप्त करता है। वह ब्रह्म है ॥१२

सदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं

पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥१३

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः
परमं साम्यमुपैति ॥१४

जिस समय विद्वान् सुवर्ण के समान प्रकाशरूप जगत् का कर्ता सर्वप्रथम पुरुष सर्व का कारण ब्रह्म को देखता है उस समय पुण्य पाप को त्याग कर माया से रहित हुआ परम समता को प्राप्त होता है ॥१३-१४

एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं
विकिरतीह सौम्य ॥१५

हे सौम्य जो विद्वान् इस ब्रह्म को प्रत्यग्रूप से सर्व प्राणियों की बुद्धिरूप गुहा में स्थित हुआ जानता है। वह अविद्यारूप ग्रन्थि को इसी जीवन में नाश करता है ॥१५

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥१६
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥१७

उस निर्विशेष ब्रह्म के ज्ञान होने पर इस ब्रह्मज्ञानी के हृदय की ग्रन्थि नाश हो जाती है। और सर्व सन्देह भी नष्ट हो जाते हैं। समस्त कर्म भी क्षीण हो जाते हैं ॥१६-१७

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं
गच्छन्ति नामरूपे विहाय ॥१८
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं
पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१९

जैसे गङ्गा आदि नदियां बहती हुई समुद्र को प्राप्त कर नाम रूप को त्यागकर अस्त भाव को प्राप्त हो जाती है। तैसे ही

विद्वान् पर से भी दिव्य पुरुष को नाम रूप से मुक्त हुआ प्राप्त करता है ॥१८–१९

ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥२०

उस परमात्मा को जानकर मृत्यु को उल्लंघन कर जाता है ज्ञान से अतिरिक्त और कोई मार्ग मुक्ति के लिये नहीं है ॥२०

तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते ध्रुवम् ॥२१

वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा जानकर निश्चल ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥२१

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षरवित्सदा ॥२२

परब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते ॥२३

परम अक्षर को जानने वाला ज्ञानी जहाँ २ मरता है वहाँ २ सदा परब्रह्म में लय होता है। उसकी उत्क्रान्ति नहीं होती अर्थात वह कहीं जाता नहीं ॥२२–२३

यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन् मोक्षमश्नुते ॥२४

जो जो अपने को इष्ट वस्तु है वह त्यागता हुआ मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२४

असङ्कल्पेन शस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा ॥२५

सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥२६

असंकल्परूपी शस्त्र से जिस समय चित्त नष्ट हुआ। उस समय सर्वस्वरूप व्यापक शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥२५–२६

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥२७
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनातनम् ॥२८

अपने प्रिय सेवकों में पुण्य और अप्रिय शत्रुओं में पाप का विसर्जन करके ध्यान योग से सनातन ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥२७२८

घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः ॥२९
स गच्छति निरालम्बं ज्ञानालोकं सनातनम् ॥३०

जो घटाकाश के समान अपने आत्मा को भ्रम के लय का अधिकरण जानता है। वह एक ज्ञान से ही प्राप्त होने योग्य सनातन निरालम्ब ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥२९—३०

तृणाग्रेष्वम्बरे भानौ नरनागामरेषु च ॥३१
यस्तिष्ठति तदेवाहमिति मत्वा न शोचति ॥३२

तिनके के अगले भाग में आकाश में सूर्य में मनुष्य देव और नागों में जो ब्रह्म स्थित है। वह मैं हूँ ऐसा जानकर शोच नहीं करता ॥३१-३२

सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥३३
ब्रह्मरूपतया पश्यन् ब्रह्मैव भवति स्वयम् ॥३४

वर्ण आश्रम से रहित सर्वसाक्षी आत्मा को जो ब्रह्मरूप से देखता है वह स्वयं ब्रह्म ही होता है ॥३३—३४

तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ॥३५
विदित्वा स्वात्मनो रूपं न बिभेति कुतश्चन ॥३६

अपने स्वरूप को आनन्द स्वरूप द्वन्द से रहित निर्गुण सत्य चेतन घन ब्रह्मरूप से जानकर किसी से भय नहीं करता ॥३५-३६

वासनां सम्परित्यज्य मयि चिन्मात्रविग्रहे ॥३७

यस्तिष्ठति गतस्नेहः सोऽहं सच्चित्सुखात्मकः ॥३८

वासनाओं को त्यागकर मुझ चेतनमात्र स्वरूप में स्नेह से रहित हुआ जो स्थित होता है। वह सच्चित्ते सुख स्वरूप मैं हूँ ॥३७—३८

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः ॥३९

य आस्ते कपिशार्दूल ब्रह्म न ब्रह्मवित्स्वयम् ॥४०

जो ब्रह्मज्ञानी व्यक्त और अव्यक्त प्रपञ्च को त्यागकर केवल रूप से स्थिर होता है। हे कपिश्रेष्ठ हनुमान वह ब्रह्मज्ञानी नहीं किन्तु ब्रह्म ही है ॥३९—४०

इस प्रकार इस प्रकरण में फलस्वरूप प्रतिपादक वाक्यों द्वारा ब्रह्मज्ञान का फल क्या है इस विषय का निरूपण किया क्यों कि बिना फल के जाने से किसी की प्रवृत्ति किसी कार्य में नहीं होती। ब्रह्मज्ञान का फल परमानन्द स्वरूप में स्थित होना ही है अब अगले प्रकरण में विदेह मुक्ति के प्रतिपादक वाक्यों का वर्णन करेंगे।

॥ इति ऊनविंशतिप्रकरणम् ॥

—:-०-:—

अथ विदेहमुक्तिवाक्यानि।

अब विदेह मुक्ति के प्रतिपादक वाक्यों के वर्णन करते हैं।

विमुक्तश्च विमुच्यते ॥१

जो जीवन्मुक्त है वही देह के छुटने का बाद विदेह मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१

गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥२

यह जीव हृदयरूपी गुहा के आश्रय अविद्याग्रन्थि से प्रथम ही मुक्त हुआ। वह देह छूटने पर भी मुक्त होता है ॥२

अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आत्मकाम आप्तकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ॥३

ज्ञ न होने के अनन्तर कामना करने योग्य विषयों के अभाव होने से किसी पदार्थ की कामना नहीं करता हुआ स्थिर होता है। जो यह अकाम है। वही बन्धन के हेतु काम से रहित होने से निष्काम है। वही निष्काम केवल आत्मा की ही कामना वाला है वही आत्मकाम पुरुष स्वरूप की प्राप्ति से आप्त काम होता है। अर्थात् केवल निर्विशेष ब्रह्म को ही जानता है। उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते अर्थात् इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर को नहीं अवलम्बन करते। किन्तु यहाँ ही लीन हो जाते हैं। इस तरह ब्रह्म ही होता हुआ ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥३

तद्यथाहि निर्ल्वयिनी वल्मी के मृता प्रत्यस्ता शयीतैव-मेवेदं शरीरं शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणोब्रह्मैव तेज एव।।४

जैसे सर्प की त्वचा (केंचुल) अपने आश्रय वाल्मीक आदि पर मृत सर्प के समान प्रतीयमान परित्यक्त हुई शयन करती है। इसी तरह ज्ञान के अनन्तर ममता से रहित यह शरीर शयन करता है। अनन्तर यह विद्वान् सर्प के समान विद्यमान हुआ भी अविद्यमान है और पूर्ववत् शरीर से रहित है अतएव अमृत है। प्राण आदि के प्रवृत्ति का निमित्त और चेतनमात्र होने से प्राण और तेजस्वरूप ब्रह्म ही है ।।४

अशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराड् भवति ।।५

वह विद्वान् शरीर इन्द्रि प्राण और अज्ञान से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप है वह स्वयं अपनी महिमा में प्रकाशित होने से स्वराड् होता है ।।५

पृथिव्यप्सु प्रलीयत आपो ज्योतिषि लीयन्ते ज्योतिर्वायौ विलीयते वायुराकाशे आकाशमिन्द्रियेष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूतादौ विलीयन्ते भूतादिर्महति विलीयते महानव्यक्ते विलीयतेऽव्यक्तमक्षरे विलीयतेऽक्षरं तमसि विलीयते तमः परे देव एकीभवति परस्तान्न सन्नासन्न सदसत् ।।६

पृथिवी जल में लय होती है। जल अग्नि में लय होता है।

अग्नि वायु में लय होता है। वायु आकाश में लय होता है। आकाश इन्द्रियों में इन्द्रियाँ तन्मात्रओं में तन्मात्रायें अहङ्कार में अहङ्कार महत्तत्व में महत्तत्त्व अव्यक्त रूप कारण में लय होता है अव्यक्त अक्षर में लय होता है अक्षर तमरूप अज्ञान में लय होता है तम पर देव परमात्मा में एकता भाव को प्राप्त होता है। उस पर से भिन्न न सत् है। न असत् है न सदसत है। अर्थात् वही अद्वैत तत्त्व है ॥६

ब्रह्माण्डं तद्गतलोकान् कार्यरूपांश्च कारणत्वं प्रापयित्वा ततः सूक्ष्माङ्गं कर्मेन्द्रियाणि प्राणांश्च ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्टयञ्चैकीकृत्य सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चकं संयोज्य भूमिं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ वायुमाकाशे चाकाशमहङ्कारे चाहङ्कारं महति महदव्यक्ते अव्यक्तं पुरुषे क्रमेण विलीयते विराड्हिरण्यगर्भेश्वरा उपाधिविलयात्परमात्मनि लीयन्ते ॥७

ब्रह्माण्ड और उसके अन्दर के लोक, कार्यरूपों को कारण में लय करके उसके अनन्तर सूक्ष्मांग, कर्मेन्द्रिय, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, अन्तः करण चतुष्टय (चार-मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) को एक करके सब भौतिक पदार्थों को अपने २ कारण पञ्चभूतों में मिलाकर—जैसे भूमि जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहङ्कार में, अहङ्कार को महत्तत्व में महत्तत्व को अव्यक्त में, अव्यक्त को पुरुष में, क्रम से लय होते हैं।

विराट्, हिरण्यगर्भ ईश्वर अपनी २ उपाधि के लय होने पर परमात्मा में लय हो जाते हैं ॥७

प्रारब्धक्षयवशाद् देत्रय भङ्गं प्राप्योपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्परिपूर्णता विदेहमुक्तिः ॥८

उपाधि से विनिर्मुक्त हुआ जैसे घटाकाश परिपूर्ण आकाशपद को प्राप्त होता है तैसे ही विद्वान् के प्रारब्ध कर्म क्षय होने के बाद प्रातिभासिक (प्रतीतिमात्र) तीनों देहों के भंग होने पर परिपूर्ण जो स्थिति है वही जीवन्मुक्त है ॥८

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥६
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥१०

इस विद्वान के हृदय में स्थित जो समस्त काम है वे जिस समय परित्याग कर दिये जाते हैं। उस कामत्याग के अनन्तर ही मनुष्य जो देहाभिमान के कारण मरणधर्म वाला था वह अमृत हो जाता है। इसी शरीर में ब्रह्म को प्राप्त करता है। अर्थात् विदेह मुक्त हो जाता है ॥६-१०

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्न्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ॥११

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥१२

वेदान्त शास्त्र के विज्ञान से जिन्हों ने अच्छी तरह से तत्व का निश्चय कर लिया है और सन्यास रूपी योग से ही शुद्ध

सत्त्व प्रधान जे सन्यासी हैं। वे सम्यक् ज्ञान के प्राप्त होने के समय में ही ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त होते हुये मुक्त हो जाते हैं। अर्थात् विदेह मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥११-१२

तस्याभिध्यानाद्योजना त्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥१३

उस परमात्मा के ध्यान से और जिन ईश्वर की एकता से परिपूर्ण तत्त्व ज्ञान की भावना से पुनः अन्त में कारण स्वरूप माया की आत्यन्ति की निवृत्ति हो जाती है ॥१३

जीवन्मुक्त पदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ॥१४
विशत्यदेह मुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥१५

जैसे वायु आकाश में गति से रहित होता है। तैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त पद को त्याग कर निज देह के नाश होने पर विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥१४-१५

ततः सत्सम्बभूवाशौयद्गिरामप्यगोचरम् ॥१६
यच्छून्य वादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदाम्यत ॥१७

अभिमान निवृत्ति के अनन्तर जीवन्मुक्ति दशा से अन्त में यह मुनि शून्यादियों का जो शून्य है और ब्रह्मज्ञानियों का जो ब्रह्म है वह होता है ॥१६-१७

विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलात्मकम् ॥१८
पुरुषः सांख्य दृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम् ॥१९
शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ॥२०

विज्ञान वादियों का जो विज्ञान मात्र है। सांख्यों का जो निर्मल पुरुषरूप है। और योगियों का जो ईश्वर है शवों का जो शिव है। काल वादियों का जो काल है। जो वाणी से भी अगोचर है विदेह मुक्त उसी रूप को प्राप्त होता है ॥१८-१९-२०

यत्सर्वशास्त्र सिद्धान्तं यत्सर्व हृदयानुगम् ॥२१
यत्सर्व सर्वग वस्तु यत्तत्त्वं तदसौस्थितः ॥२२

जो सब शास्त्रों का सिद्धान्त है। जो सब के हृदय में स्थित है। जो सब और सब में व्यापक वस्तु है। वही उत्तम तत्वरूप से यह विदेह मुक्त स्थित होता है ॥२१-२२

यदनुत्तमनिष्पन्दं दीपक तेजसामपि ॥२३
स्वानुभूत्यैक मान च यत्तत्त्वं तदसौस्थितः ॥२४

जो सब से उत्तम चञ्चलता से रहित सूर्यादिकों का भी प्रकाशक है। जिसमें अपना अनुभव ही एक प्रमाण है ऐसा जो तत्व है वह यह विदेह मुक्त रूप से स्थित है ॥२३-२४

यदेकश्चानेकश्च साञ्जनश्च निरञ्जनम् ॥२५
यत्सर्व चाप्यसर्व च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥२६

जो एक और अनेक है माया के सहित और उससे रहित है। जो सब है और सब से रहित भी है। ऐसा जो तत्व है वही विदेह मुक्त रूप से स्थित है ॥२५-२६

निरानन्दोऽपि सानन्दः सच्चासच्च बभूव यः ॥२७
न चेतना न च जड़ो न चैवासन्न सन्मयः ॥२८

जो विदेह मुक्त कहा जाता है। वह आनन्द से रहित होने पर भी आनन्द के सहित है। और सत् असत् है न चेतन है न जड़ है। न सत है न असत है॥२७–२८

अजममरमनाद्यमाद्यमेकं पदममलं सकलञ्च निष्कलञ्च ॥२९

स्थित इति स तदानभः स्वरूपादपि विमलस्थितिरीश्वरः क्षणेन ॥३०

जो अजर, अमर, अनादि, एक निर्मलपद सकल और निष्कलरूप से स्थित है वह विदेमुक्त उस समय आकाश स्वरूप से भी निर्मल क्षण में स्थिर होने को समर्थ है ॥२९–३०

व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ ॥३१

सलिलकण इवाम्बुधौमहात्मा विगलितवासनामेकतां जगाम ॥३२

माया और उसके कार्य्यरूप कलङ्क से रहित शुद्ध स्वयं निर्मल आत्मरूप पवित्र पद में यह विदेहमुक्त महात्मा वासना से रहित हुआ जल के कण के समान एकता को प्राप्त हुआ ॥३१–३२

संशान्तदुःखमजडात्मकमेकसुप्तमानन्दमन्थरमपेतरजस्तमोयत् ।

आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवाभवन्ति ॥३३–३४

सर्व दुःख शान्त हो गया है जिसका जड़ता से रहित, एक सुप्त, आनन्द निर्भर रज तम से रहित आकाश कोश के समान

शुभ, आनन्द निर्भर रज तम से रहित आकाश कोश के सामान सूक्ष्म और तनुता से रहित जीवन्मुक्त महात्मा उस परमपद में लीन चित्त हो जाते हैं। अर्थात् विदेह मुक्त हो जाते हैं ॥३३-३४

विदेहमुक्त एवासौ विद्यते निष्कलात्मकः ॥३५
समग्राग्र्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते ॥३६

जीवन्मुक्तत्वादि समस्त श्रेष्ठ गुणों का आधारभूत सत्व गुण भी जिस समय लय हो जाता है। उस समय वह निष्कलस्वरूप विदेह मुक्त होता है ॥३५-३६

विदेहमुक्तौ विमलेपदे परम पावने ॥३७
विदेहमुक्तिविषये तस्मिन् सत्त्वक्षयात्मके ॥३८
चित्तनाशे विरूपाख्ये न किञ्चिदिह विद्यते ॥३९
नगुणा नागुणास्तत्रन श्री नाश्रीर्नचैकता ।॥४०
जीवन्नेव सदामुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥४१

परम पावन निर्मल विदेह मुक्ति में विरूप नामक चित्त नाश होने पर सत्वरूप गुण साम्यता की सिद्धि होने, पर उस विदेह मुक्ति में गुण, अगुण, श्री, अश्री, एकता है कुछ भी नहीं रहता। ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ सदा कृतार्थरूप जीवन्मुक्त होता है ॥३७-३८-३९-४०-४१

उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ॥४२

स्वयं ब्रह्म होता हुआ उपाधिनाश के बाद अद्वैत ब्रह्म ही होता है ।॥४२

शास्त्रेणनश्येत्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं नश्यतिचापरोक्षात् ॥४३

प्रारब्धनाशात्प्रतिभामनाशएवं त्रिधा नश्यतिचात्ममाया ॥४४

वेदान्त शास्त्र के श्रवण से और उससे प्रतिपाद्य विषय के मनन और निदिध्यासन से संसार को पारमार्थिक सत्यता नष्ट हो जाती है। और अपरोक्ष ज्ञान से व्यवहारिक सत्यता भी नष्ट हो जाती है प्रारब्ध के नाश से प्रतीति भी नष्ट हो जाती है इस तरह तीन प्रकार से आत्मा को माया का नाश होता है ॥–४३–४४

अहि निर्ल्वयनी सर्पनिर्मुक्ता जीववर्जितः ॥४५
वल्मीके पतितस्तिष्ठेत्तं सर्पोनाभि मन्यते ॥४६

सांप की केचुल सांप से छूटा, जीव से रहित वल्मीक पर पड़ी हुई स्थित रहती है सांप उसका अभिमान नहीं करता ॥४५–४६

एवं स्थूलञ्च सूक्ष्मञ्च शरीरं नाभिमन्यते ॥४७
प्रत्यक् ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्याज्ञानेसहेतुके ॥४८

इसी प्रकार आत्मज्ञान रूपी अग्नि से कारण के सहित मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने पर ज्ञानी शरीर का अभिमान नहीं करता ॥४७–४८

नेतिनेतीतिरूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ॥४९

नेति नेति (यह नहीं यह नहीं) रूप होने से यह ज्ञानी शरीर से रहित विदेह मुक्त होता है ॥४९

विश्वश्च तैजसश्च प्राज्ञश्चेतिचते त्रयः ॥५०
विराड् हिरण्य गर्भश्च ईश्वरश्चेति च तेत्रयः ॥५१
ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाडं लोका भूरादयः क्रमात् ॥५२

स्वस्वोपाधि लयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि ॥५३

परमात्मा के निर्विशेष रूप के ज्ञान होने पर विश्व तैजस प्राज्ञ और विराड हिरण्यगर्भ ईश्वर ये तीनों ब्रह्मण्ड और पिण्डाण्ड और भू आदि लोक क्रम से अपनी अपनी उपाधि के लय होने से ही अन्तरात्मा में लीन हो जाते हैं। उसके बाद विद्वान् जीवन्मुक्त होता है ॥५१-५२-५३

तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं नकिञ्चन् ॥५४
कालभेदं वस्तुभेदं देशभक्तं स्वभेदकम् ॥५५
किञ्चिद्भेदं न तस्यास्तिकिंचिद्वापिनविद्यते ॥५६

ज्ञानी सर्व प्रकार से तूष्णी (चुप) स्थित रहता है। विज्ञानी अखण्डाकार वृत्ति से सबको भूल कर स्थित रहता है। सभ्यके ज्ञानी निर्विकल्प समाधि के परवश होकर तूष्णी स्थित होता है। उसके है या नहीं है इत्यादि भ्रम भी नहीं होता। वह विदेह मुक्त हो जाता है। विदेह मुक्ति की अवस्था में देश काल, वस्तु और स्वगत भेद इत्यादि कोइ भी ब्रह्म में नहीं है। उसके ब्रह्मरूप होने से अपने से अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। यही विदेह मुक्ति का स्वरूप है ॥५४-५५-५६

जीवेश्वरेति वाक् क्वेति वेदशास्त्राः क्वाहन्त्विति ॥५७
इदं चैतन्यमेवेति, अहंचैतन्यमित्यपि ॥५८
इति निश्चय शून्यो यो वैदेहीमुक्त एवसः ॥५९

यह जीव यह ईश्वर इत्यादि भेद वचन कहां हैं। चार वेद और छ शास्त्र कहां हैं। मैं यह वृत्ति कहां है यह प्रतीत होने

वाला जगत चेतन ही है यह वृत्ति कहां है। मैं चेतन हूं यह वृत्ति कहां है। इस प्रकार की निश्चय रूप वृत्ति से जो शून्य है। वही विदेह मुक्त है ॥५७-५८-५६

ब्रह्मभूता प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ॥६०
स्वच्छरूपो महामौनी वैदेहीमुक्त एवसः ६१

ब्रह्मभूत प्रशान्त स्वरूप ब्रह्मानन्दमय सुखी स्वच्छरूप महा मौनी जो मुनि है वही विदेह मुक्त है ॥-६०--६१

ब्रह्मैवाह चिदेवाहमेवं वापि न चिन्त्यते ॥६२
चिन्मात्रेण यस्तिष्ठेद्वैदेहीमुक्त एवसः ॥६३

मैं ब्रह्म हूं वा मैं चेतन हूं। इस प्रकार का भी चिन्तन जो नहीं करता किन्तु चेतन स्वरूप से जो स्थित है वही विदेह मुक्त है ॥६२-६३

चैतन्यमात्रसंसिद्धः स्वात्मारामःसुखासनः ॥६४
तुर्यतुर्य परानन्दो वैदेहीमुक्त एवसः ॥६५

चेतनमात्र रूप से जो ससिद्ध है। अपने आत्मा में रमण करने वाला सुख स्वरूप में स्थित तुरीयातीत परानन्द स्वरूप जो मुनि है वही विदेह मुक्त है ॥६५--६५

यस्य प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न ॥६६
अतीतातीयभावो यो वैदेही मुक्त एव सः ॥६७

जिसको संसार का भान नहीं। और ब्रह्माकार वृत्ति भी

नहीं। जो तुर्यातीत भाव को प्राप्त हुआ है। वह विदेहमुक्त है ॥६६-६७

चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ॥६८
सर्ववृत्ति विहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ६६

जो समस्त चित्त वृत्तियों से रहित है। और जो चित्तवृत्तियो का प्रकाशक है। और सर्व वृत्ति से रहित स्वरूप जिसका है। वह विदेह मुक्त है ॥६८-६६

सर्वात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः ॥७०
नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥७१

सर्व का आत्मा रूप मैं आत्मा हूँ। सब से परे परमात्म स्वरूप आत्मा मैं हूँ। और नित्यानन्द स्वरूप आत्मा मैं हूँ ऐसा जिसका निश्चय है वह विदेह मुक्त है ॥७०-७१

जीवात्मा परमात्मेति चिन्ता सर्वस्व वर्जितः ॥७२
सर्व सङ्कल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ७३

यह जीवात्मा है यह परमात्मा है इस प्रकार की समस्त चिन्ताओं से रहित और सर्व सङ्कल्प से शून्य जो है वह विदेह मुक्त है ॥७२-७३

आत्मज्ञानाविहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः ॥७४
भावाभावविहीनात्मा वैदेहीमुक्त एवसः७४

जो कुछ यह है वह आत्मा ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय से रहित है।

इसी का रूप है। भाव और अभाव से रहित आत्मा है। यह ज्ञान जिसको है वही विदेह मुक्त है ॥७५–७५

ओङ्कारवाच्य हीनात्मा सर्व वाच्य विवर्जितः ॥७६
अवस्थात्रय हीनात्मा वैदेहो मुक्त एवसः ॥७७

ओंकार के वाच्य ईश्वर आदि से रहित आत्मा है और सर्व शब्दों के वाच्यार्थ के रहित आत्मा है। तीनों वस्थाओं से रहित आत्मा है। इस प्रकार का दृढ़ निश्चय जिसको है वही विदेह मुक्त है ॥७६–७७

इस प्रकार विदेह मुक्ति का प्रतिपादक अन्तिम प्रकरण समाप्त हुआ। इसमें देहपात के अन्दर होने वाली विदेह मुक्ति के स्वरूप का वर्णन है। इससे बढ़कर और कोई गति नहीं। अतएव ग्रंथ की समाप्ति भी हो गई।

॥ इति विंश प्रकरणम् ॥



श्री पूज्य ब्रह्मचारी जी द्वारा लिखित अन्य प्रकाशित पुस्तकें जो हमारे यहाँ मिलती हैं—

१—महात्मा कर्ण	२।।)
२—मतवाली मीरा	२)
३—श्री शुक नाटक	।।)
४—भागवती कथा की बानगी	।-)
५—मेरे महामना मालवीय उनका और अन्तिम संदेश	।-)
६—भारतीय संस्कृति और शुद्धि	।-)
७—शोक शान्ति	।-)
८—बद्रीनाथ दर्शन सचित्र	५)

विशेष सूचना—श्री ब्रह्मचारी जी द्वारा इनके अतिरिक्त भी बहुत ही पुस्तकें इधर उधर पड़ी हैं, बहुत सी अर्थाभाव से रुकी हैं। उनको प्रकाशित करने का भी पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है प्रेमी पाठकों के सम्मुख उन्हें रखने का भगवान् शीघ्र अवसर देंगे।

मिलने का पता

व्यवस्थापक, संकीर्तन भवन झूसी
प्रयाग।

२

हिन्दू धर्म और हिन्दी-साहित्य में युगान्तरकारी
धार्मिक प्रकाशन

भागवती कथा

देश के विभिन्न विद्वानों नेताओं और पत्र-पत्रकारों द्वारा
भूरि-भूरि प्रशंसित, इसके लेखक हैं

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

इसे पढ़कर आप

१—श्रीमद् भागवत तथा अन्यान्य पुराणों की कथाओं का रहस्य सरलता, सरसता और घरेलू ढङ्ग से समझेंगे।

२—दैनिक जीवन को सात्विक, धार्मिक और राष्ट्रीय जीवन की सार्थकता में परिणत करेंगे।

३—व्यावहारिक या गार्हस्थ्य जीवन को जीने के लिए नहीं जीवन के लिये उच्च और धार्मिक बनायेंगे।

४—श्रेय और प्रेय योग और भोग एक साथ सम्पादन करने की शिक्षा घर बैठे प्राप्त करेंगे।

५—जननी-जन्मभूमि की महत्ता को समझकर स्वधर्म स्ववर्ण स्वदेश, स्ववेश के प्रति निष्ठावान् बनेंगे।

इस अद्भुत ग्रन्थ रत्न के १०८ भाग होंगे

प्रति मास एक भाग प्रकाशित करने की योजना चल रही है। अब तक २४ भाग छप चुके हैं। २५० पृष्ठों के प्रत्येक सचित्र भाग की दक्षिणा १।) है।

१५=) वार्षिक प्रदान करने पर १२ भाग बिना डाक व्यय के आपके घर रजिस्ट्री से पहुँच जायँगे।

प्राप्ति स्थान—

१—संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग)